...रूस-यात्रा



श्री शौकत उस्मानी

'प्रताप'-पत्र-पुष्प की आठवीं पुस्तक

मेरी रूस-यात्रा

लेखक—श्री शौकत उस्मानी

प्रकाशक,—

'प्रताप' कार्यालय

कानपुर।

प्रथम संस्करण } सं० १९८५ (१९२८ ई०) { मूल्य ॥=)

मुद्रक—
गणेश शङ्कर विद्यार्थी
'प्रताप' प्रेस
कानपुर ।

भूमिका

इस पुस्तक के लेखक भाई शौकत उस्मानी साहब ने हिज़रत के यात्रियों के साथ हिन्दुस्तान से प्रस्थान किया था। पर अपनी क्रान्तिकारी मनोवृत्ति और राष्ट्रीय भावों के कारण टर्की न जाकर आप रूस जा पहुँचे। रास्ते में परिस्थिति-वैचित्र्य के कारण आप को अनेक भयंकर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, यहां तक कि कई मौकों पर आप तथा आप के साथी काल के गाल से बाल बाल बचे। पुस्तक में हिन्दुस्तान के कट्टर धर्माभिमानी मुसलमानों की हिजरत और ख़िलाफ़त सम्बन्धी मनोवृत्ति पर बहुत अच्छा प्रकाश डाला गया है और मुसलमान भाइयों को इस से काफ़ी शिक्षा मिल सकती है। पुस्तक में अफ़ग़ानिस्तान, तुर्किस्तान और रूस की सामाजिक तथा राज-नीतिक प्रगति का रोचक विवरण दिया गया है। पाठकों को इस के पढ़ने से पता चलेगा कि अफ़ग़ानिस्तान और रूस आज कल किस प्रबल वेग से आगे बढ़ रहे हैं। पुस्तक का सब से महत्वपूर्ण अंश रूस के सम्बन्ध का है। उस अंश में रूस की तत्कालीन परिस्थिति और प्रगति पर बड़े ही विशद और सुन्दर ढंग से प्रकाश डाला गया है। जिस समय का यह यात्रा-वर्णन है, उस के बाद इधर रूस ने बहुत अधिक उन्नति कर ली है। वर्तमान राजनीतिक संसार में वह अपना एक अनोखा और बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। दुनिया उस की प्रगति

की ओर आज कल बड़ी उत्सुकता से देख रही है। आशा है कि हिन्दुस्तान की साधारण जनता—जिसे इस देश की हालत का बहुत कम पता है, और जिस की दशा बहुत अंशों में रूस की राज्य-क्रान्ति के पूर्व की हालत से मिलती जुलती है—इस पुस्तक को पढ़ कर अपनी जानकारी बढ़ायेगी तथा कुछ शिक्षा लाभ करेगी। पुस्तक का विषय-विन्यास, उस की लेखन-शैली, इतनी मनोरञ्जक और सुन्दर है कि इस के पढ़ने में उपन्यास का आनन्द आता है।

देवव्रत शास्त्री



मेरी रूस-यात्रा

पहला अध्याय

सन् १९२० में हिन्दुस्थान के राजनीतिक समुद्र में हिजरत की लहर उठी। वह अपने बहाव में पंजाब के किसानों और छोटे छोटे दुकानदारों को दूर तक बहा ले गई। इन के अलावा कुछ ऐसे लोग भी इस की धार में बह गए, जो यह अच्छी तरह समझते थे कि आज़ादी क्या चीज़ है। हिन्दुस्थान के राष्ट्रीय आन्दोलन में कुछ ऐसे लोग भी थे जिन्हें शान्तिमय असहयोग का तरीक़ा पसन्द न था। ये लोग उन्हीं में से थे। इन का ख़्याल था कि शान्तिपूर्ण असहयोग से स्वराज्य नहीं मिल सकता। उन की नौ जवान उमंगों को यह सीधा सादा उसूल न जँचा। इसी कारण हिजरत आन्दोलन ने उन्हें इस बात का मौक़ा दिया कि वे बाहर जावें और दूसरे मुल्कों के तौर--तरीक़े सीखें। चूंकि अमीर--काबुल हिन्दुस्थान छोड़ कर अफ़ग़ानिस्तान जाने वाले लोगों का स्वागत करते थे, इस लिये इन लोगों ने अमीर के बुलावे से लाभ उठाया।

हिजरत का उद्देश्य

असल में तो हिजरत एक मज़हबी आन्दोलन था। तुर्की ख़िलाफ़त के सम्बन्ध में मुसलमान नाराज़ हुए, और आन्दोलन जारी हुआ। जो मुसलमान अंग्रेज़ी हुकूमत से सन्तुष्ट न थे, उन्हें मज़हबी हुक्म था कि वे किसी ऐसे मुल्क में चले जायँ, जहां

मुसलमानों का राज्य हो। कट्टर मज़हबी लोग खिलाफ़त से ना-उम्मेद हो गए थे और इसी का नतीजा था हिज़रत। इस के कारण ३६,००० से अधिक मुसलमान अफ़ग़ानिस्तान चले गए। शुरू-शुरू में तो लोग २० और ३० के क़ाफ़िलों में रवाना हुए, पर बाद में इन के झुण्डों का परिमाण बढ़ता गया। इस समय हम इन में से पहले सात क़ाफ़िलों की कुछ बातें बतावेंगे। ज्यादातर इन्हीं में हमारे ख़ास-ख़ास दिलेर व्यक्ति शामिल थे। लेखक तीसरे क़ाफ़िले में था।

अफ़सरों द्वारा पहला स्वागत

हिन्दुस्थान छोड़ने के बाद हम ने अपने मुल्क की सरहद और जलालाबाद (अफ़ग़ानिस्तान का पहला ख़ास शहर) के बीच की जगहों में ज़्यादा समय नष्ट न किया। जलालाबाद पहुँचते ही यहां के गवर्नर और अफ़ग़ानिस्तान के युद्ध-मंत्री जनरल नादिर ख़ां ने हमारा भली भांति स्वागत किया। उन्हों ने सारे अफ़ग़ान अफ़सरों से ज़्यादा, हमारा ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। वे बहुत मिलनसार और सुशिक्षित थे। उन का व्यक्तित्व चुम्बक की तरह अपनी ओर खींचने वाला और बदन इकहरा, चुस्त और लम्बा था। वे छोटी ब्रिचेज़ (चुस्त पाजामा) और लम्बे फ़ौजी-जूते पहने थे। उन की पतली सुरीली आवाज़ से उन के प्रति विश्वास और आदर पैदा हो जाता था। हिन्दूकुश की सब से दूर की गुफ़ाओं में रहने पर भी उन्हें अन्तर्जातीय-राजनीति का पूरा ज्ञान था। वे यूरोप के कुटिल नीति की चालें ख़ूब समझते थे। मौजूदा हिंदुस्थान की राजनीति की जानकारी उन्हें इतनी थी कि जिसे जान कर आश्चर्य होता था। राजनीतिक विषयों पर बातचीत हुई, तो वे भारत का ज़िक्र बड़े अधिकार और मुहाविरेदार भाषा में करते । हम उन की दलीलें सुन-सुन कर उन पर लट्टू हो जाया करते थे। वे युद्ध-मंत्री और सूबेदार तो

थे ही, साथ ही पूर्व की एकता की आवाज़ उठाने वाले सब से पहले अख़बार के सम्पादक भी थे। वह पत्र था 'इत्तिहाद-ए-मशरक़ी' (पूर्वीय--ऐक्य)। इस अख़बार के पन्नों पर एक सरसरी निगाह, सम्पादक की योग्यता का क़ायल कर देती थी। नादिर में बहुत से गुण थे। उन्हों ने अफ़ग़ानिस्तान की आज़ादी की लड़ाई में ख़ास हिस्सा लिया था।

काबुल को प्रस्थान

हम ने दो हफ़्तों से ज्यादा नादिर ख़ां की मेहमानदारी का आनन्द उठाया। इस के बाद हम लोग काबुल के लिए रवाना हुए। हम दो जत्थों के मिला कर कुल पचास आदमी थे। जलालाबाद से चल कर हमारा पहला पड़ाव 'जगदलक' में हुआ। यह स्थान पहाड़ी चट्टानों पर बसा है। इन चट्टानों के सामने ही हीरे की खानें हैं। आज कल इन खानों में खुदाई नहीं होती। लोगों ने हम से बतलाया कि इन में बहुत दौलत भरी थी।

अमीर से मुलाकात

कठिन पहाड़ों पर चार दिनों तक चलने के बाद हम लोग काबुल पहुँचे। उस दिन जून १९२० की तीसरी तारीख़ थी। खुद अमीर ने हमारा स्वागत किया। वे अपनी कुर्सी पर बैठे रहे, और हमें 'बिरादरान'—(भाइयों)—शब्द से सम्बोधित करते हुए बोले, "अफ़ग़ानिस्तान आप का देश है। मैं तो लोगों का केवल रक्षक हूँ। भाई की तरह मैं आप का स्वागत करता हूँ। अपनी शक्ति भर मैं आप का सत्कार करूँगा। आप के लिए कॉलेज और फ़ौजी महकमे खुले हुए हैं। आप में से ज्यादा शिक्षा पाए लोग कृपा कर विश्वविद्यालय (यूनिवर्सिटी) में दाख़िल हो जायँ। नौकरियों का बदला अच्छी तरह दिया जायगा। और जो लोग कम गुणवान हैं, वे फ़ौज में भर्ती हो

सकते हैं। लेकिन फ़िल हाल आबहवा बदलने के लिए हम ने आप के लिए जबलुस्सिराज (प्रकाश का पहाड़) में ख़ास इन्तज़ाम किया है। वहाँ आप दो महीने राज्य के मेहमान रहिए। उस के बाद यहाँ वापस आइएगा और अपनी अपनी रुचि के अनुसार काम चुन लीजिएगा।"

हमारे कष्ट-सहन और त्याग के लिए बधाई देते हुए श्रीमान् ने अपना व्याख्यान समाप्त किया। हम ने उन्हें सहानुभूति और मेहमानदारी के लिए धन्यवाद दिया।

अतिथि-गृह

वहां से हम लोग अतिथि-गृह गए। यह एक पुरानी बड़ी इमारत थी। इस के एक हिस्से में कुछ रूसी 'मेनशेविक' परिवार के शरणागत लोग ठहरे थे। बाकी मकान के उस वक्त तो हमीं मालिक थे। शाम का खाना खा चुकने के बाद, हमारी बातचीत का ख़ास विषय था जबलुस्सिराज। वहाँ जाना क्यों ज़रूरी था? हम वहाँ जायँ क्यों ?---यही समस्याएँ थीं। अब तक हम में से ज्यादातर लोगों की परेशानी यह थी, कि 'अपवित्र' भारत छोड़ दें और काबुल पहुँच जांय। इन लोगों का अन्तिम ध्येय काबुल था। अनातोलिया पहुँचना तो कुछ थोड़े से लोगों का ध्येय था। कुछ और लोगों का निशाना इस से भी दूर था (जो पहले से ही उन के दिलों में जम चुका था)। अरपंसी विचारों की लड़ाई में अनातोलिया की जीत हुई। छिछले तथा धर्मान्ध लोग 'अनातोलिया-अनातोलिया' चिल्लाने लगे। वे कहने लगे, "हम तो अनातोलिया (एशियाई तुर्किस्तान) जायँगे और वहाँ ख़लीफ़ा के लिए लड़ेंगे। काबुल के अमीर हमें एकान्त स्थान में दो महीने का वक्त नष्ट करने को क्यों भेजना चाहते हैं;?" उन के दिलों में अमीर के इरादों पर शक हो गया। इस सन्देह को हमारे यजमान (मेज़बान) के सत्कार-हीन बर्ताव ने और भी मज़बूत कर दिया।

अतिथि--गृह के स्वामी के व्यवहार में, अमीर के भाषण की लेश-मात्र भी झलक न थी। हमें अपने निजी खर्च से अपना खाना खरीदना पड़ा। यद्यपि यह राज्य का दोष नहीं, बल्कि बीच वालों का था; पर, इस व्यवहार से हमारे दिलों में अमीर और उन की सरकार के खिलाफ़ भाव पैदा हो गये।

भयंकर स्वप्न

रात आयी, और उस के साथ ही भयंकर स्वप्न की भांति मौलवी उबेदुल्ला भी आए। यह हिन्दुस्थान की सामाजिक गति के विरोधियों के मुख्य प्रतिनिधि थे। ये अमीर के हिन्दुस्थानी मामलों में सलाहकार और इस्लाम की सत्ता सर्वत्र चाहने वाले एक दल के नेता थे। बुढ़ापे और लम्बी डाढ़ी के कारण ये ऊँचे दर्जे के सलाहकार जान पड़ते थे। इन्हों ने हमें क़ाज़ी अब्दुल अली के निन्दित प्रचार कार्य के खिलाफ़ सचेत किया। क़ाज़ी अब्दुल अली शुद्ध राष्ट्रीय संस्था के नेता थे। मुल्ला उबेदुल्ला हम में से कुछ को अलग ले गए और एक चतुर साज़िश करने वाले का सा स्वरूप बना कर बोले कि तुम लोग हमारे दल में भर्ती हो जाओ और जितनी जल्दी हो सके जबलुस्सराज चले चलो। इन की चुप्पी निगाहों से ही हमें उन पर सन्देह होने लगा। इन के चेहरे से चालबाज़ी और बातों से साज़िश टपकती थी। इन पर विश्वास करने से हम ने इन्कार कर दिया। इतनी आसानी से हम फंदे में फंसने वाले न थे। हम ने साफ़--साफ़ कह दिया कि हम लोग जानकारी--प्राप्ति की खोज में कितने ही पहाड़ पार कर चुके हैं, कोई अपनी उन्नति या प्रसिद्धि चाहने वाला हमें बुद्धू नहीं बना सकता, और न हम लोग बिना अच्छी तरह जाने बूझे किसी संस्था में शामिल ही होंगे। इस पर मुल्ला बुरा मान गये और हम से रुखाई के साथ बिदा हुए।

तीनतरफ़ा लड़ाई

दूसरे दिन क़ाज़ी अब्दुल अली ने मुहाज़िरीन (हिजरत करने वाले) और काबुल प्रवासी सारे हिन्दुस्थानियों को दावत दी। हमारे पहले मुल्ला (उबेदुल्ला) वहाँ मौजूद थे। वहाँ एक तीसरा उमंगी मुल्ला--मौलवी अब्दुल हक़--भी था। यह हम में से उन लोगों की तरफ़ था, जो टर्की जाना और ख़लीफ़ा के लिए लड़ना चाहते थे। अब तो नियमित लड़ाई, नहीं, नहीं, तीन तरफ़ा लड़ाई, शुरू हो गई। कुछ देर तक तो हम सिर्फ़ देखने वाले रहे। आपस में खूब गाली गलौज हुई। मुल्ला और मौलवी दोनों गन्दे और बेवकूफ़ थे। पर, क़ाज़ी शराफ़त से नहीं गिरा और अन्त में वही विजयी हुआ। वह सब से अधिक युक्तिपूर्ण था। इसी से हमारी पूरी सहानुभूति उस के प्रति थी। मुल्ला की दलीलों में उस के अफ़सर होने के भाव भी मिले रहते थे। इसी पर हम बहुत नाराज़ हुए। अब हमारी बारी आई कि उस के अधि-कारीपन का विरोध करें। हमने बड़े ज़ोरदार शब्दों में जबलुस्सिराज जाने से इन्कार कर दिया और तुर्किस्तान जाने का इरादा प्रगट किया। टर्की और तुर्किस्तान जाने वाले दोनों दल मिल गए और मुल्ला के हाथ से मैदान जाता रहा।

अफ़सरों की नाराज़ी

उस बूढ़े के लिए यह हार बहुत काफ़ी थी। वह सीधे अमीर के पास गया। उन से सारा वाक़या कह सुनाया। इस पर अफ़सरों को क़ाज़ी के ऊपर गुस्सा आया। दूसरे दिन वह बुलाया गया और मुहाजिरीन (हमलोगों) को जबलुस्सिराज जाने के सम्बन्ध में अमीर का हुक्म न मानने के लिए भड़काने के अपराध में उसे खूब भला बुरा कहा गया। उस से कहा गया कि या तो हम से हुक्म मनवाएँ, वरना जेल जाने के लिए तैयार हो जाय। हमारे

इन्कार करने पर उस पर क्या बीतेगी हम जानते ही थे। इसी से हम ने उस की प्रार्थना स्वीकार कर ली और जबलुस्सिराज जाने की तैयारी की। इस काम के बदले क़ाज़ी ने चार हफ्ते बीतने के पहले ही हमारे लिए टर्की जाने को 'पासपोर्ट' (आज्ञा-पत्र, जिसे दिखा कर कोई, एक देश से दूसरे देश जा सकता है) ला देने का वादा किया।

जबलुस्सिराज।

आज अपनी ज़िन्दगी में सब से पहली बार हम ४० मील तक पैदल चलने के लिए तैयार हुए। चौथे दिन हम जबलुस्सिराज पहुँचे। यहां पहले पहुँचे हुए काफिलों ने हमारा बड़े उत्साह से स्वागत किया। अब हम अपनी कहानी के वर्णन में ज़रा रुक जायंगे। यहां पर हम अपने वनवास की जगह का कुछ वर्णन करेंगे और यह बतलावेंगे कि यहां अफसरों ने हमारे साथ कैसा वर्ताव किया। जबलुस्सिराज में ५०० छोटे छोटे मकान हैं। ये कई ढालूदार पहाड़ियों पर बने हुए हैं। यह स्थान बहुत ही रमणीय है। इस के तीन ओर ऊंचे ऊंचे पहाड़ हैं। इन से जाड़े की हवा से रक्षा होती है। चौथी ओर एक बड़ा मैदान अथवा हरियाली का समुद्र आंखों की पहुँच तक फैला हुआ है। काबुल नदी की एक सहायक नदी इस गांव के ठीक बीचों बीच से होकर बहती है। यहां की आबहवा निहायत उम्दा है। काबुल की चारों ओर के देश में तो तन्दुरुस्ती बढ़ाने वाला जबलुस्सिराज एक ही स्थान है। गांव के निकट ढालू पहाड़ों की गोद में इस देश के सब से बढ़िया अंगूर के बागीचे हैं। स्विटज़रलैण्ड प्राकृतिक दृश्यों में अपना सानी नहीं रखता। वजह यह है कि उस की इश्तिहारबाज़ी खूब हो चुकी है। 'कैमरा' (फोटो उतारने का यन्त्र) की पहुँच न हो सकने के कारण अफ़गानिस्तान अन्धेरे में पड़ा रह गया। नहीं तो, यहां के दृश्य

पृथ्वी के अन्य किसी देश के दृश्यों को बहुत पीछे पड़ा छोड़ कर आगे बढ़ गए होते। जबलुस्सिराज का शासन एक गवर्नर करता है। यह अच्छा सेनापति भी है। यह स्थान लड़ाई के लिए बहुत उपयुक्त है। इसी से यहां के क़िले में फ़ौज की एक टुकड़ी भी रहती है।

हमारी भोजन–सामग्री

यहां हमें डेढ़ सेर गेहूं का आटा हर रोज़ दिया जाता था। इतना एक आदमी के लिए बहुत ज्यादा था। कोई दूसरी चीज़ नहीं दी जाती थी। इसी से हम अपनी ज़रूरत से बचे हुए आटे से, घी, तेल, गोश्त इत्यादि बदल लेते थे। ईंधन तो हम ख़ुद ही, पास वाले जंगल से ले आते थे। गोकि इसी बदले के तरीक़े से हम ईंधन भी ख़रीद सकते थे, लेकिन हमें ख़ुद ईंधन लेने जाने में मज़ा आता था। हमारे रहने के लिए अधिकारियों ने दुमंजिला मकान दे रखा था। इस पर अफगान–सैनिकों का कड़ा पहरा रहता था। मुहाजिरीन को जबलुस्सिराज भेजने की पालिसी (नीति) में गहरा मतलब छिपा था। इस के दो अभिप्राय थे। एक तो हमारी मनोवृत्ति जानना और उसे अफगानों की ओर बदलना और दूसरे इस में हिन्दुस्थान के खुफिया विभाग के दूतों का छिपे छिपे पता लगाना। इस नीति में बहुत हद तक सफलता मिली; क्योंकि वास्तव में कुछ ऐसे आदमी ताड़ लिए गए, जिन पर शक किया जा सकता था। लेकिन कम-से-कम चालीस देश निर्वासितों पर इस नीति का कुछ असर न हुआ। वे ऐसी खरी और जँची हुई आत्माएँ थीं, जिन के दिल देशभक्ति के प्रेम से अम्बर की तरह धधकते थे। ये लोग 'माँ' की आज़ादी के अलावा किसी दूसरे के भक्त नहीं थे। पठानों को ये न तो पसन्द करते थे और न उन पर घृणा ही करते

थे। इन्हें अफ़ग़ानिस्तान से बहुत आशाएँ न थीं। इसी कारण इस प्रकार के व्यवहार से ये कुछ निराश नहीं हुए।

निर्वासित-समिति

हमें क़ाज़ी के वादे के 'पासपोर्ट' की बहुत आशा थी। हफ़्तों पर हफ़्ते बीत गए, पर कुछ समाचार न मिला। हम अपने एकान्त और बिना काम काज के जीवन से ऊब उठे। काबुल की कोई ख़बर तक हमें न मिली। कुछ दिनों बाद हमें एक काफ़िले से ख़बर मिली कि क़ाज़ी बाबर के मक़बरे के नज़दीक क़ैद हो गया है। इस पर हमें बेहद क्रोध हुआ। हम ने एक अर्ज़ी लिखी और उसे गवर्नर के द्वारा अमीर के पास भेजा। उस में हम ने क़ाज़ी के तुरन्त छोड़े जाने और तुर्किस्तान जाने की बे-रोक टोक इजाज़त माँगी। उस अर्ज़ी में तीन सौ निर्वासितों के दस्तख़त थे। धीरे-धीरे हम ने अपना संगठन करना आरम्भ किया। एक निर्वासित समिति बनाई गई। उस का काम चलाने के लिए पदाधिकारियों और सभापति का चुनाव हुआ। अकबर खाँ कुरैशी सभापति चुने गए। यह असाधारण शक्तिशाली और धुन के पक्के आदमी थे। यह पहले व्यक्ति थे, जिन्हें हिन्दुस्तान में बोल्शेविज्म (साम्यवाद) फैलाने के कारण सन् १९२१ में १० वर्ष की कड़ी सज़ा हुई थी। आज कल यह सी० पी० (मध्य प्रान्त) की जेलों में पड़े हैं और इस देश के आदमी और निजी मित्र इन की कुछ भी ख़बर नहीं लेते। यह भारत के उन सुपूतों में से हैं, जो जेलों में पड़े पड़े सड़ा किए और अख़बारों या नेताओं ने एक भी आवाज़ विरोध में, उन के लिए नहीं उठाई।

इस संगठन ने मुहाजिरीन में छिपे हुए कर्मण्यता के भाव फिर से जगाए। वास्तव में यह अच्छा काम था। इस संगठन में उप-समितियाँ भी थीं। यह सब निर्वासितों के खाने पीने और

खेल-कूद की व्यवस्था करती थी। हमारे बीच कुछ पहले के सैनिक भी थे। उन से हम ने फ़ौजी कसरतें और क़वायदें सीखना आरम्भ किया। एक प्रकार की मोटी लट्ठियों से बन्दूकों का काम चलाया गया। इस प्रकार दो महीने से कम में ही निर्वासित लोग अच्छे सैनिक बन गए। हमारी फुर्ती पर अफ़ग़ान सिपाहियों को आश्चर्य होता था। कई बार स्वयं गवर्नर ने हमारी 'परेड' (फ़ौज़ी-क़वायद आदि) देखी। उस ने कहा कि यदि तुम लोग अफ़ग़ान फ़ौज में भर्ती हो जाओ तो तुम्हें अच्छी तनख्वाह दी जायगी। हम ने हर प्रकार की तज़वीजें नामंजूर कर दीं।

दो सप्ताह से अधिक हम ने अपने प्रार्थनापत्र के उत्तर की राह देखी। तब हमारा धैर्य समाप्त हो गया। हमारी समिति ने कुछ आदमियों को नियुक्त किया कि वे गवर्नर से इस बात का पता लगावें कि हमारी अर्ज़ी के भाग्य का क्या फैसला हुआ? उस ने बहाना किया कि इस विषय में उसे जानकारी न थी। इसी बीच उसने हमारे दर्मियान फूट डालने का काम शुरू किया। पेशावरी निवासियों में ज्यादातर लोग हम से अलग हो गए। दूसरी अर्ज़ी भेजी गई। इस बार इस पर सिर्फ १९८ आदमियों के हस्ताक्षर थे। इस की भाषा ज़रा सख्त थी। बे-सब्री के साथ दो हफ्ते और बीते, फिर भी कोई जवाब न आया। अमीर की इस टाल-मटोल ने हमारे क्रोध की आग के लिए ईंधन का काम किया। हम यह सोचने लगे कि या तो गवर्नर ही हमारी अर्ज़ियां दबा देता है, या अमीर की सरकार ही किसी पालिसी से इन का जवाब देना ठीक नहीं समझती। लेकिन सब से प्रत्यक्ष कारण तो यह था कि मंसूरी से लिखा-पढ़ी होरही थी। (उस समय अंग्रेज़ों और अमीर में मंसूरी में सुलह की बात-चीत चल रही थी।) अमीर की सरकार ने यह आवश्यक समझा कि निर्वासितों को ऊपर, नीचे, किसी ओर बढ़ने न दिया जाय। हिजरत से

अफ़गानों को एक फ़ायदा हुआ। उन की आज़ादी का हक़ आसानी से मान लिया गया। भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में दलबन्दियां थीं। इस का मूल कारण राष्ट्रीय दृष्टिकोण के अनुसार, हिजरत ही था। इसी ने भारतीय मुसलमानों में औरों से ज्यादा अधिकार प्राप्त करने के भाव मज़बूत किए और उन्हें राष्ट्रीय आन्दोलन से अधिक अलग किया।

आख़िरकार एक तीसरी अर्ज़ी लिखी गई और गवर्नर को अमीर के पास भेज देने के लिए दे दी गई। यह एक प्रकार की अन्तिम-चेतावनी सी थी। इसे कोई भी आत्म-सम्मान पूर्ण गवर्नमेन्ट सहन नहीं कर सकती थी। इस की भाषा बिल्कुल गँवारू और मर्म-भेदिनी थी। इस सम्बन्ध में अमीर की सहन-शीलता प्रशंसनीय है। वह पूर्णरूप से शांत चित्त बने रहे। हमें सिर्फ़ अफ़ग़ानिस्तान से निकल जाने की आज्ञा देकर वे सन्तुष्ट हो गए। यही तो हम चाहते थे। हां, इस बार अर्ज़ी में केवल ८२ आदमियों ने दस्तख़त किए थे। इस में से ४० राष्ट्रवादी थे और ४२ कट्टर मज़हबी। यही आत्माएं ख़िलाफ़त की बीतती हुई आशाएं थीं। जुलाई के एक सुहावने तीसरे पहर निर्वासन का हुक्म सुनाया गया। गुस्से से पीले और डरावने लगने वाले गवर्नर ने हमें निकल जाने की सूचना दी। इस वक्त भी वह हमें एक बात सुझाने का मौक़ा नहीं चूका। वह बात थी अफ़ग़ानिस्तान में रहने और यहां सरकारी नौकरी करने के लाभों के सम्बन्ध की। उस की प्रार्थना ने कम से-कम दो को तो लुभा ही लिए। इस प्रकार हम ४०--४० रह गए।

ख़िलाफ़त और मुल्लापन

अपनी यात्रा शुरू करने के पहले यह बता देना हमारे लिए उपयुक्त होगा कि अफ़ग़ान लोगों के भाव ख़िलाफ़त के प्रति क्या

थे। हिन्दुस्तानी मुसलमानों के लिए खिलाफ़त बहुत कुछ थी, पर अफ़ग़ान जनता के लिए कुछ भी न थी। केवल कुछेक ने इस के भीतर एक ऐसा मज़बूत हथियार छिपा हुआ देखा, जो अंग्रेज़ी सरकार के ऊपर चलाया जा सकता था। शेष तो इस से विरक्त से रहे। एक साधारण मज़हबी मुसलमान के लिए 'मिल्लत' का अर्थ राष्ट्र से अधिक न था। इन लोगों का दृष्टिकोण पूरी तरह से राष्ट्रीय था। जिस किसी से हम ने ख़लीफ़ा की भक्ति करने को कहा, उस ने कोरा उत्तर दिया। हमारे हिन्दुस्तान के मुसल्मान नेता अपने लिए औरों से ज्यादा अधिकार चाहने के पक्ष में हैं। उन्हें चाहिए कि ज़रा अफ़ग़ानिस्तान जायँ और सब से अँधेरे में पड़े हुए अफ़ग़ान देहातियों से सीखें कि राष्ट्रीय धारणा की ख़ास बातें क्या हैं। मैं आज कल के ख़लीफ़ाओं और मौलाना लोगों को चुनौती देता हूं। वे मेरे साथ अफ़ग़ानिस्तान, तुर्किस्तान, अज़ीरिस्तान या टर्की चलें और वहां ख़िलाफ़त या अरब के बारे में अपने यहां से आधा जोश भी तो दिखा दें! इन लोगों ने अत्यन्त नाशकारी तरीक़ों से अपने लिए अधिक अधिकार प्राप्त करने वाली गुमराह भावना पैदा कर दी है, और तमाम मुसल्मान जनता को अपनी जन्मभूमि के लिए आरम्भिक कर्तव्य-पालन करने से अलग कर दिया है। यह सब इन की ऐसी भूल से हुआ है, जो दुरुस्त नहीं की जा सकती। ये हिन्दुस्तान को अब भी 'क़ाफ़िरिस्तान' समझते हैं। लेकिन अरब को भी तो रेल और दूसरे आवागमन के साधनों ने अपवित्र कर डाला है! 'रेगिस्तान के जहाज़' (ऊँट) की जगह तेज़ी से खुद-बखुद चलने वाली कलों ने ले ली है। अरब के पवित्र महात्माओं को आजकल की सवारियों में ज्यादा आराम मिलता है। कलें जारी कर के इब्न-सऊद ने तमाम अरब में क्रान्ति मचा रखी है। बीती हुई सदियों में राजनीतिक तथा सैनिक लहरों और मज़हबी उथल-पुथल की

रास्ते से मुल्लापन बड़ी तेज़ी से निकला था। वही मुल्लापन आज कल उस पवित्र मुल्क में सबको बदल देने वाली कारीगरी की ताक़त के सामने हटता जा रहा है और कोई रुकावट तक नहीं डालता। लेकिन हमारे मौलाना लोग अब भी भूतकाल का फिर से उद्धार करने का और हिन्दुस्तानी मुसलमानों को अरब, मेसोपोटामिया, टर्की या खुदा जाने कहाँ, फिर से बसाने का स्वप्न देख रहे हैं!

थकानेवाली यात्रा का आरम्भ

अब हम अपने सफ़र की ओर आते हैं। जो चीजें हमारे काम की न थीं, उन्हें हम ने समाप्त कर डाला, और जितनी अपनी अपनी पीठ पर ले जा सकते थे, वे सब मज़बूती से बोरों में भर लीं। इस के बाद हम फौजियों की तरह चार-चार की क़तारों में चल पड़े। सब से अधिक न छोड़ने की इच्छा हमें अपनी किताबों की थी। लेकिन परिस्थिति ने ऐसा करने पर मज़बूर किया। हम ने अपनी पुस्तकें 'काबुल कुतुब-खाना' को प्रदान कर दीं। सैनिकों ने हमारा अस्बाब एक-एक कर के जांचा। गवर्नर, जो अब मित्रता के भाव दिखाने लगा था, हमें विदा करने आया। अपने कंधों पर हम ने अपनी बनावटी बन्दूकें रखीं; चार-चार की कतारें बनाईं और जबलुस्सिराज से विदा हुए। हमारे पैर तो आगे की ओर बढ़ते थे, पर दिल पीछे की ओर लौटते थे। हमारे लिए जबलुस्सिराज में बहुत सी आकर्षक बातें थीं। यद्यपि यह हमारे लिए निर्वासित स्थान था, तो भी इस ने हमें तन्दुरुस्ती हासिल करने में खूब मदद दी। इस की शहतूत की कुञ्जों ने हमें क़ीमती फल और बहुत आराम पहुँचाये थे। यहां के निवासी यद्यपि हमारे खिलाफ़ती भावों से उदासीन थे; फिर भी वे बहुत हमदर्द और मेहमांनिवाज़ थे। कुछ ऊंचे आदर्शों को

प्राप्त करने के लिए ही हम इसे इतनी आसानी से छोड़ने पर विवश हुए। हम ने इसे उतने ही कड़े दिल से छोड़ा, जितने से कि अपना देश छोड़ा था। सूर्य्य डूबने के पहले हम गुलवहार पहुँचे। यहां की आवादी बहुत थोड़ी थी। हमरा पथ-प्रदर्शक हमें कारवां सराय ले गया। यहां हम ने अपने को जहां तक सम्भव था, रात भर के लिए सुखी और सुरक्षित किया। हममें से १२ आदमी पहरा देने के काम पर नियुक्त किए गए। एक साथ दो आदमी बनावटी बन्दूकें लिए रखवाली करते थे। इन्हें दो घण्टे तक पहरा देना होता था। हम लोग बाक़ायदा 'फ़ौजी-गारद' बना लिया करते और बाकी मुहाजिरीन चोरों या डाकुओं से निडर होकर सोया करते। सवेरे हमने खाने की ज़रूरी चीजें खरीदीं और अपनी यात्रा का असली और सब से कठिन भाग आरम्भ किया। काबुल से गुलवहार तक का देश पहाड़ी नहीं है। गुलवहार के बाद ही हिन्दूकुश, अन्दराब और गोरहन्द की बर्फ़ से ढकी हुई चोटियां आरम्भ होती हैं।

गुलवहार

गुलवहार और तशाकरगां के बीच घने पहाड़ और जंगल हैं। ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों में संकरी और दुर्गम घाटियां हैं। रास्ते ढलुए और फिसलने वाले हैं, और इन के बीच शेरों की तरह गरजती हुई नदियां बहती हैं। इस प्रकार यह अफ़गान देश का सब से अगम्य हिस्सा है। नाले और गुफ़ाएं देखने से यह मालूम होता था, मानों कोई अजगर मुंह खोले पड़ा था। हिमालय की तराई के जंगल यहां के जंगलों की बराबरी नहीं कर सकते। इस हल न हो सकने वाले गोरखधन्धे को देखकर चतुर सर्वेयर (नापनेवाले) के भी छक्के छूट जाते थे। कहीं कहीं तो सीधे पहाड़ों में बहुत तंग और ख़तरनाक रास्ते कटे

हुए थे। इन पर एक-एक कर के भी लोग मुश्किल से निकल पाते थे। गुलबहार छोड़ने पर हम ऊंचे पहाड़ों पर चढ़े। इन पर बौद्ध-विहारों के खंडहर अब भी पाए जाते हैं। एक हाथी के तिगुने आकार की एक बड़ी चट्टान पर हम ने कुछ शिलालेख देखे। हम में से कोई भाषा-शास्त्री नहीं था, इसी से हम इन्हें पढ़ न सके।

धमकी देनेवाली 'पंजशीर'

लगातार बारह मील तक हम चढ़ते रहे। थोड़ा सा भी उतार न मिला। लेकिन एकाएक ढाल मिला। हम डरावनी 'पंजशीर' नदी के सामने आ पहुँचे। उस में उन दिनों बाढ़ आई हुई थी। वह सड़क के ऊपर बह रही थी। कोई दूसरा रास्ता न था। पहाड़ों को पार करना मुश्किल हो गया। पहाड़ कुबड़े और दैत्य की तरह हमारे रास्ते और नदी के ऊपर झुके खड़े थे। हमारे राह बताने वाले निराश हो गये। उन्हों ने हमें जबलुस्सिराज लौट चलने की सलाह दी। हम दुविधा में पड़ गए। ज़िद्दी नदी के खिलाफ युद्ध घोषित कर दिया गया। 'मंत्रणा-सभा' सलाह करने के लिए बुलाई गई। कुछ ने तो कहा कि पीछे लौट चला जाय, लेकिन ज्यादा लोग इस पक्ष में थे कि या तो मौत मिले या जीत। सिद्धान्तों पर बहस हुई। किसी ने नेपोलियन के आल्पस् पार करने का हाल कहा, किसी ने सिकन्दर की चढ़ाइयों का। पीछे लौटने का अर्थ था हार, और आगे बढ़ने के मानी थे फ़ौरन मौत। दो में से क्या पसन्द किया जाय? आख़िरकार इज़्ज़त की मौत-ऊंचे इरादों की तलाश में मौत-मंजूर की गई। "एक क़दम भी पीछे न हटो" यही हमारा युद्ध-घोष हो गया। पीछे हटने के मानी थे हार और हार का अर्थ था मौत। वीरता की मौत में अपनी तरफ़ खींच लेने

का शक्ति थी। हम ने आगे बढ़ने का निश्चय किया। हमारे अफ़ग़ान रहनुमाओं ने हमें अपने भाग्य पर छोड़ दिया। नदी की थाह ली तो यह मालूम हुआ कि सड़क के ऊपर इतना पानी था कि हम में से सब से लम्बे की ठोढ़ी तक पहुँच जाता था। हमला कैसे किया जाय इस का खाका तैयार किया गया। लम्बे आदमियों को अगुआ होना पड़ा। साफ़े एक दूसरे से लम्बी कड़ी की तरह बांध दिए गए। फिर उन्हें कमरों में लपेटा। इस तरह हरेक गांठ सा मालूम होने लगा। गौहर रहमान दर्वेशी ('मेहनतकश'-सम्पादक) सब से लम्बे थे। वही सब से आगे किए गए। छोटे क़द वाले लम्बे आदमियों के हाथ सौंपे गए। मशीन के पुर्जों की तरह एक दूसरे के कंधे मिल गए। इस प्रकार कोई पंद्रह मिनट तक हम पंजशीर के ठंढे बहते हुए पानी से लड़े। कभी कभी तो ऐसा जान पड़ता था कि नदी हमें बहा ले जायगी। लेकिन आत्म-शक्ति नदी की धार से ज्यादा मज़बूत निकली और कुछ समय में हम सूखी ज़मीन पर जा पहुँचे। सभी वर्फ़ जैसे ठंढे पानी में भींगे खड़े कांप रहे थे। किनारे पर कुछ सूखी घास जलाई गई। उस से हम ने अपनी देह और कपड़े सुखाए। तब पंजशीर-कारवां सराय की ओर रवाना हुए। यह इस जगह से कोई दो मील दूर थी। यहां पहुँचने पर खास तकलीफ़ यह हुई कि हमें रोटी तैयार न मिली। नदी से लड़ने और सफ़र से हम थक गये थे, और भूख के मारे मर रहे थे। दोपहर तक, किसी तरह चालीस रोटियां मिली और वह भी दूनी क़ीमत देने पर। हरेक अपना अपना हिस्सा हड़प कर गया। खाना खा चुकने में देर न हुई थी कि हम ज़मीन पर लोटते दिखाई पड़े और चन्द मिनटों में खर्राटें लेने लगे। ज्यादा मेहनत के बाद आदमियों को गहरी नींद आया करती है! जब तक मग़रिब की नमाज़ के वक्त मुल्ला

की अज़ान न सुनाई दी, हम में से कोई हिला डुला तक नहीं। एक एक कर के हम उठे और अनुमान किया कि वह उषाकाल था। किसी-किसी ने तो बड़े भोलेपन से पूछा कि क्या सवेरा हो गया? अपनी थकावट-पूर्ण यात्रा की वज़ह से हम लोग आम तौर पर सवेरा पसन्द नहीं किया करते थे। सन्ध्या में हमें अधिक आनन्द मिला करता था, क्योंकि शाम और रात के वक्त ही तो हम यात्रा की थकान और कमज़ोरी दूर कर सका करते थे। अज़ान हो चुकने पर हमें पता लगा कि अभी तो शाम के ही सात बजे हैं। इस पर हमें बेहद खुशी हुई। क्योंकि इस के मानी थे कि हमें और दस घण्टे आराम करने को मिल गए।

लुटेरों का सामना

दूसरे दिन बड़े सवेरे हम फिर चल पड़े। रास्ते में कोई दुर्घटना नहीं हुई। कोई बीस मील तक चल कर हम 'गंजू' पहुँचे। यह छोटा सा गाँव पंजशीर के किनारे बहुत सुन्दरता से बसा है। नदी की दोनों ओर बहुत ऊँचे पहाड़ हैं। पहाड़ों की चोटी पर से नदी और चूने से पुते हुए मकान बहुत सुहावने दिखाई पड़ते हैं। कारवाँ-सराय के नज़दीक ही एक झरना है। नदी भी झरने की तरह बहती है। सराय के मिर्ज़ा को हम लोगों की ओर से कुछ स्वाभाविक घृणा थी। उस ने हमें सराय में घुसने न दिया। अब हमारे लिए इस के सिवा दूसरा चारा न था कि बाहर पड़े रहें और जंगली जन्तुओं और डाकुओं के शिकार बनें। यहाँ के आदमी भी असाधारण अशिष्ट थे। उन्हों ने हम से खाने और दूसरी ज़रूरत की चीज़ों के लिए दूने दाम लिये। वे समझते थे कि हम लोग धनी आदमी थे। उन्हों ने पूछा कि क्या तुम्हारे पास बदलने के लिए सोने के सिक्के या बेचने को पिस्तौलें हैं? पहले तो हम ने इन प्रश्नों का अभिप्राय न समझा, लेकिन बाद में

यह भेद खुला कि यह हमारे प्रति उन के बुरे इरादों का मंगलाचरण था। रात हुई। इस बार पहरेदारों की संख्या दूनी कर दी। उन्हें आगाह कर दिया कि सराय के भीतर बाहर आने जाने वाले लोगों पर कड़ी निगाह रखें। मिर्ज़ा के शत्रुवत् व्यवहार के सबब से ही हमें इतना सावधान होना पड़ा था।

थके तो थे ही, हम लोग आठ ही बजे सो गए। ग्यारह बजे एकाएक हम लोग पहरे वालों की सीटियों की आवाज़ों से चौंक पड़े। इन सीटियों का मन्तव्य था कि हम लोग सजग हो जायँ। अपनी बनावटी बन्दूकें लेकर हम तैयार हो गये। हमारे कमाण्डर (सेनापति) ने कहा कि ख़तरा भयंकर है। एक रक्षक ने सुना था कि सराय की दूसरी ओर कुत्ते भूँक रहे हैं और घोड़ों की टापों की आवाज़ सरपट हमारे डेरे की ओर बढ़ रही है। यह सब क़रीब एक फ़र्लांङ्ग की दूरी पर सुनाई पड़ता था। रात बहुत अंधेरी थी। हमें कुछ दिखाई न पड़ता था, लेकिन आवाज़ निकट से निकट बढ़ती आ रही थी। इस समय असाधारण हिम्मत की ज़रूरत थी। इस हमले से हम बहुत परेशान हो रहे थे, लेकिन हम ने धैर्य न छोड़ा। बड़ी होशियारी से हम ने अपनी रक्षा का काम शुरू किया और हम फ़ारसी में इस तरह बातें करने लगे:—

एक ने ज़ोर से कहा, "क्या मैं अपनी बन्दूक के सीध में निशाना मारूँ?"

कमाण्डर, "ठहरो, कहीं किसी बेगुनाह का खून न हो जाय। अपनी बन्दूकें और पिस्तौलें तैयार रखो।"

"ये लोग यह समझ कर आ रहे हैं कि हमारे पास हथियार नहीं हैं। मेरी राय में बहुत सी गोलियाँ एक साथ छोड़ कर हम इन को सबक़ सिखा दें।"—दूसरे ने चिल्ला कर कहा।

कमाण्डर, "नहीं, ठहरो; उन्हें और नज़दीक आ जाने दो। देखना तो यह है कि वे हमें लूटने आ रहे हैं या अपनी राह जा रहे हैं।"

धीरे-धीरे बात करने की आवाज़, कुत्तों का भूकना और सरपट की आवाज़ सभी चीज़ें बन्द हो गईं। इस चालाकी की जीत से कमाण्डर और भी शेर हो गया। तब वह ज़ोर से बोला; "अरे, हम पर हमला करने वालो! ख़बरदार! हम तुम्हारे मेहमान हैं। इस लिए अगर हम आगे बढ़ें और तुम पर गोली चलावें तो हमारी कृतघ्नता होगी। हमारे पास बन्दूकें और पिस्तौलें हैं। तुम ने बाज़ार में हम से पूछा था कि क्या हमारे पास बन्दूकें थीं। हम ने इन्कार कर दिया था, क्योंकि हम उन्हें अलग नहीं करना चाहते थे। ऐसे मौकों के लिए ही तो हम इनकी हिफ़ाज़त करते आ रहे हैं।" हमला करने वाले डर गए। सरपट की आवाज़ अस्पष्ट होने लगी और दूर होती ही गई। यहाँ तक कि थोड़ी देर में बिलकुल शान्त हो गई। एक भी आदमी या थोड़ी सी भी गोली-बारूद की हानि न हुई और हमला निष्फल कर दिया गया। शक्ति पर चालाकी की जीत हुई। इतनी आसान जीत के ऊपर हमें इतनी हँसी आई कि लिख नहीं सकते। हम जीत तो गए, पर अभी आधी रात बाक़ी थी। आक्रमण करने वालों के लिए अभी ६ घण्टे और थे। १२ बजे पहरा बदला गया। हम अपने बालू के बिस्तरों पर फिर सो गए। थोड़ी देर बाद आक्रमणकारी लोग फिर से दिखाई पड़े। इस बार उन की तादाद पहले से दूनी थी। इस समय तीन बजे थे। सीटियों ने फिर से हमारी नींद तोड़ी। एक-एक कर के हमारे थके हुए सैनिक फिर इकट्ठे हुए। सेना ने हथियार उठा लिए। बस, हुक्म मिलने भर की देरी थी।

"यह लोग तुले हुए हैं कि हमें मार डालें और लूट ले जायँ। इन्हें इस का ख्याल नहीं है कि हम इन के मेहमान हैं। आओ, हम भी आगे बढ़ें, और इन्हें सिखा दें कि हम इन की तरह डरपोंक नहीं हैं।" हमारे एक मित्र ने जोश में आकर चालाकी से कहा।

कमाण्डर ने उलट कर कहा,—"नहीं, धीरज तो धरो। वे लोग जितने ही नज़दीक आवेंगे, हमारा निशाना उतना ही ठीक वैठेगा। दूरी पर चला कर अपनी गोली--बारूद हम क्यों नष्ट करें ? क्योंकि रात अँधेरी है और कुछ भी दिखाई नहीं देता।"

इस के बाद हम ने फ़ौजी-कवायद करना शुरू किया। "दाहिने', 'वाएँ', 'पूरा घूमो', 'वाएँ घूमो', 'दाहिने घूमो' 'ठहरो', चुस्त खड़े हो जाओ (attention)" आदि की आवाजें होने लगीं। यह सब करने के साथ ही हम ने सराय की हद के अन्दर ही कुछ क़दम आगे और कुछ पीछे चलना शुरू किया। अब कमाण्डर ने फिर से हमला करने वालों को सम्बोधित कर के कहा,—"भाइयो, अगर तुम हमारे हाथों मारे जाओ तो इस का दोष तुम पर ही है, किसी और पर नहीं। हम सोचते थे कि तुम्हें नहीं मालूम कि हमारी हथियारबन्दी कितनी मज़बूत है। यही सोच कर हम तुम्हें अब तक बचाते आए। लेकिन अब हमारे आदमी बे-सब्र हो रहे हैं। वे तुम पर टूटना ही चाहते हैं। ख़ुदा के लिए अपनी जान और हमारी आत्मा बचाओ। हमें ख़ून बहाने का पाप न लगने दो।" चालाकी फिर भी कामयाब हुई। देहाती अफ़ग़ान लौट गए। परिस्थिति पूरी तौर से हमारे क़ाबू में आ गई। इस जीत से हमें नींद की जुदाई और अत्यन्त थकावट—ये दो चीजें मिलीं। सवेरा भी ऐसे ही बीता। अपनी रात की घटनाओं का कुछ

ख़्याल न कर के हमें अपना नियमित काम अर्थात् सफ़र शुरू करना ही पड़ा। यहाँ के रहने वालों ने सवेरे पहर भी अपना ढङ्ग न वदला। हम लोग उन से परेशान हो गए। यहाँ तक कि उन से खाना तक न ख़रीदा। दो मील तक हम समतल और चिकनी घाटी पर चले। एक घुमाव के वाद ऊँची पहाड़ियां आ पहुँची। पञ्जशीर ने कई स्थानों पर सड़कें डुबो और तोड़ दी थीं। हमारे सामने सिर्फ एक रास्ता वच रहा था, और वह था सुनसान पहाड़ों पर चढ़ कर जाना।

निर्दयी हिन्दूकुश

दोपहर के समय हम लम्बे नालों में फिर से उतरे। ये नाले एक उपजाऊ मैदान के पास जा निकलते थे। इस मैदान के आधे से ज्यादा हिस्से के ऊपर पंजशीर सफेद चादर की तरह फैली हुई थी। नदी ने वह पुल तोड़ डाला था, जिस पर हो कर हमारी राह जाती थी। हमारी कल्पना को काम करने का अच्छा अवसर हाथ लगा। थके तो थे ही, हम शहतूत के पेड़ों के नीचे वैठ गए और दूसरी ओर पहुँचने की तरकीवें सोचने लगे। नदी की चौड़ाई को देख कर डर लगता था। पर, हमें एक सुविधा थी। नदी का पानी वहुत ही साफ़ था। इस की तह पर पड़ा हुआ एक छोटा से छोटा कंकड़ तक दिखाई पड़ जाता था। इस कारण हम को विना किसी हिचकिचाहट के पानी में घुसने का साहस हुआ। सव के साफे एक साथ बाँध दिए गए। हम जल में घुसे। कई स्थानों पर तो यह छाती के ऊपर नहीं था। लेकिन एक दूसरी बाधा हमारी राह देख रही थी। हम वेरहम हिन्दूकुश के मुक़ाविले में आ पहुँचे। गो कि आज २१ जुलाई थी, तो भी चोटियाँ वर्फ़ से ढकी थीं। पहाड़ सीधा, ऊपर चला गया था। रास्ता वहुत सँकरा और ख़तरनाक

था। लेकिन हमें हर हालत में आगे बढ़ना ही था। हम ने चढ़ना शुरू किया। सन्ध्या होने लगी; लेकिन हमारी कठिन यात्रा का अन्त न था। हम बुरी तरह थक गए थे। बहुतों के पैर सूज उठे थे। और उन से ख़ून बह रहा था। तन्दुरुस्त आदमियों ने अशक्तों को सहारा दिया। हम चोटी पर चढ़ने लगे। हमें आशा थी कि किसी सराय पर पहुँचेंगे; लेकिन इस के बदले सामने बर्फ़ का समुद्र पा कर हमारे होश उड़ गए। यह ईश्वर की बनाई हुई हिम-रेखा थी। हमारे दिल भीतर ही भीतर टूट रहे थे। शरण लेने के लिए कहाँ जायँ? खाने को क्या खायँ? यह समस्या थी। मौत की अच्छी-खासी लड़ाई थी! बे-बसी और निराशा के कारण कुछ में तो पागलपन के चिन्ह दिखाई पड़ने लगे। कुछ लोग इतने ज़ोर के क़हक़हे मारने लगे कि वर्णन नहीं किया जा सकता। कुछ नाचने लगे। कुछ अजीब-अजीब गाने गाने लगे। कोई कोई कहने लगे 'आख़िरी नमाज़ पढ़ो'। "लेकिन नमाज़ क्यों पढ़ें? किस के लिए पढ़ें? ख़ुदा कहाँ है? वह हमारा उद्धार करने क्यों नहीं आता? क्या हम ने उसी की ख़ातिर हिजरत कर के नरक जाने के लिए हिन्दुस्तान नहीं छोड़ा था?" एक दूसरा अपने आप से इस प्रकार कहने लगा: "मुझे अपनी क़ब्र ख़ुद ही खोदनी चाहिए। दूसरे क्यों कष्ट उठावें? मैं अपने तईं हिन्दूकुश की बर्फ़ में गड़ जाऊँगा। यह हिन्दुस्तान का पुराना दुश्मन है। यह पहाड़ सचमुच अशकुन है। यह दैत्य है, और आज की रात हमारी जानें लेकर अपनी भूख मिटाएगा।" इतना कह कर वह सचमुच अपनी क़ब्र खोदने लगा और दैवयोग से इसी ने ज़िन्दगी बचाने की तरकीब ढूँढ निकाली। उस का खोदना व्यर्थ न हुआ। कोई दो फ़ीट बर्फ़ के नीचे उसे लकड़ियों की कुछ गँठीली जड़ें मिलीं। इस ईंधन का मिलना था कि जान में जान आ गई सब के

सब वर्फ़ हटाने पर जुट गए। हम ने इतना लम्बा टुकड़ा दम भर में साफ़ कर डाला जो फावड़े से मुश्किल से साफ़ किया जा सकता था। वर्फ़ एक ओर हटा दी गई और जड़ें इकट्ठी कर ली गईं। हम लोग ८० आदमी थे। वहुत थोड़े समय में हम ने कोई तीन चार मन ईंधन इकट्ठा कर लिया। अब तो कड़ी सर्दी से ज़ान के वच जाने का बीमा हो गया। इसके बाद खाने का सवाल पेश हुआ। अपने सामान की खूब छान बीन करने पर कुल १२ रोटियां हमें मिल सकीं। इतने अधिक भूखे आदमियों के लिये यह बहुत ही कम थीं। किसी तरह टुकड़े कर के आपस में बांटे गए। सात आदमियों को एक रोटी का हिस्सा मिला। पानी तो था ही नहीं, वर्फ़ ने उस की कमी पूरी की। लकड़ियां जला दी गईं। वर्फ़ से ढकी पहाड़ की चोटियां जगमगा उठीं। यही हमारी दिवाली थी। आग की उत्कट चाह के पीछे हमें विल्कुल ध्यान न रह गया कि हमारे नज़दीक वर्फ़ पड़ी थी। इस ने पिघलना शुरू किया। अगर हमारे कुछ 'कामरेड' (भाई) सजग न हो गए होते तो हम अपने पुराने शत्रु पंजशीर के पास इस वर्फ़ के साथ वह गए होते। पिघलती हुई वर्फ़ के ऊपर जमी हुई वर्फ़ रुकावट के लिए रख दी गई। जो वाकी वच रही, उसे आंच द्वारा दूर हटा दिया गया।

आज की रात पिछली रात से कहीं ख़राव थी। दोनों रातें एक वात में मिलती जुलती थीं। दोनों में नींद हराम थी। पर, आज 'गंजू' की अपेक्षा ख़तरा ज्यादा था। जो रात गहरी नींद में सोने या किसी नाटकघर में वीतती है, उस की अपेक्षा वह रात कहीं अधिक वड़ी मालूम होती है, जो वेचैनी और जवर्दस्ती से जागने में विताई जाती है। उस का तो अन्त ही नहीं दीखता! कुछ लोग 'अलिफ़लैला' की कहानियां सुनाने लगे, और कुछ 'वैताल पच्चीसी' की। इस प्रकार वह रात, जिस में हम मौत से

बाल बाल बच गए थे, बीती। सुबह हुआ, हम चल पड़े। लेकिन समस्या यह उपस्थित हुई कि जायँ तो कहां? हमारा बेड़ा क्यों कर इस बर्फ़ के समुद्र के पार लगे? रास्ते का तो चिन्ह तक न था। हमारा जहाज़ चट्टान से जा टकराया था। लेकिन स्वाभाविक बुद्धि ने आख़िरकार राह दिखाई। हम इस छोटे प्लेटों के (ऊँची चौरस भूमि) सुदूरवर्ती अन्तिम हिस्से में जा निकले। यहां बर्फ़ ने हमारा साथ छोड़ दिया। रास्ता बिल्कुल साफ़ आ गया। मैदान के ऊपर बिल्कुल सीधे पहाड़ थे। इस ऊँचाई से हम ने एक बहुत फैला हुआ मैदान देखा। उस में अच्छे-अच्छे खेत लहलहा रहे थे। उस (मैदान) के ठीक बीचों बीच होकर एक सुहावनी नदी कलकल नाद करती हुई बह रही थी। यह अफ़ग़ानिस्तान का एक ख़ास रमणीय प्रान्त था।

बाबर का गुम्बद

हम लोग नीचे उतरने लगे, और इस तरह अट्ठारह मील चले। इस सफ़र में हमें सब से ज़्यादा कठिनाइयां पार करनी पड़ीं। सच पूछा जाय तो पिछले तीसरे पहर की चढ़ाई की अपेक्षा इस उतार का हाल अधिक कठिन और ख़तरनाक था। जो मैदान हम ने पहाड़ पर से देखा था वह हमारे रास्ते में नहीं पड़ता था, यह जानकर हमें बहुत निराशा हुई। यह सीधी राह से कोई सात मील दूर था। हम लोग फिर से घाटियों और ऊंची नीची ज़मीन पर चलने लगे। रास्ते में हमें एक मुसाफिर मिला। हम ने उस से पूछा कि सब से नज़दीक की सरायँ कितनी दूर पर थी? उस ने जवाब दिया कि एक 'क्रोह' (कोस)। लेकिन अफ़ग़ानियों की यह आदत है कि वे कभी ठीक दूरी नहीं बताया करते। वे (दूरी) सदा कम-से-कम बताया करते हैं। क्योंकि उन का ख़्याल है कि असली फ़ासला मालूम हो जाने पर यात्री हिम्मत खो देता है।

अस्तु, लगातार कई मील चल चुकने पर भी हमारा वह 'कोह' समाप्त होने को न आया। पांच बजे हम लोग एक बहुत भारी गुम्बद के पास पहुँचे। यह ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों के बीच बना हुआ था। यहां पूरा सन्नाटा था। यहां पर सिर्फ़ दो आदमी थे। यह सरकारी नौकर थे। यहां खाने को कुछ न मिल सकता था। ये लोग सिर्फ़ आटा बेच सकते थे, और कुछ नहीं। हम ने इसे ख़रीदा और चन्द चपातियां बनाईं। इन पहरेवालों से हमें मालूम हुआ कि यह गुम्बद बाबर ने उस समय बनवाया था, जब वह हिन्दुस्तान पर हमला करने गया था। आज की रात हम ने पिछली दो रातों की अपेक्षा अधिक आराम से बिताई। सबेरे फिर हम ने अपनी दुःखमयी यात्रा आरम्भ की। ऊंचे पहाड़, डरावनी नदियां और ढलुए रास्ते हमारे रोज़ के साथी हो गए। सन्ध्याओं से हमें निकट आने वाली सरायों की ख़बर मिला करती, और प्रातःकाल हमारे चल देने की सूचना दिया करते। 'देसालन' पहुँचने के पहले कोई ख़ास दुर्घटना नहीं हुई। हम ने जबलुस्सिराज में एक संयुक्त कोष खोला था। इस समय तक वह ख़र्च हो चुका था। अब समस्या यह थी कि वह फिर से कैसे इकट्ठा किया जाय। कुछ लोग तो दिवालिये हो रहे थे। मज़बूरन हमें अपने कपड़े और साफ़े कम दामों में बेचने पड़े। जिन लोगों के पैर सूज गए थे, उन के लिए किराये पर ख़च्चर किए गए और हम ने फिर से चलना आरम्भ किया।

रेगिस्तान

पहाड़ों ने अब हमारा पिण्ड छोड़ा और हम रेगिस्तान के खुले समुद्र में घुस पड़े। इस में पेड़ों, आराम करने के स्थानों या पानी का कहीं नाम न था। घास तक जला सी दी गई थी। यह राजपूताना के "थार" रेगिस्तान से या बेरहम 'सहारा' से कम

भयानक नहीं था। सोलह मील चलकर दोपहर के वक्त हम लोग एक सोते के पास पहुँचे, पर यह भी खारा निकला। हम ने किसी न किसी तरह प्यास बुझाई और फिर चलना शुरू कर दिया। कड़ी धूप के कारण हमें फिर प्यास लगी। पर पानी का कहीं पता न था। रात ने हमें बीच ही में पकड़ लिया। सराय का कहीं पता न था। अँधेरे में हम राह भूल गए। इस से हमें वह एक स्थान पर रुक जाना पड़ा। हम में से कुछ लोग तो अपनी ज़िन्दगी से निराश हो रहे थे! प्यास के मारे हमारे गले सूख रहे थे। हमारे क़ाफ़िले के बहुत से आदमी पीछे रह गए। आख़िरकार थोड़ी दूर पर रोशनी दिखाई पड़ी। दो घुड़सवार इस बात के लिए नियुक्त किए गए कि जाकर पानी और आबादी का पता लगावें। दो घण्टे बाद हमारे आदमी पानी और सराय की ख़बर लेकर लौटे। हमने पानी पिया और तब जान में जान आई। इन दोनों आदमियों ने हमें राह दिखाई। हम 'बग़लाँ' नामक गांव में जा पहुँचे। अब हमारा ध्यान अपने खोये हुए मित्रों की ओर गया। कुछ आदमियों ने हाथ में मोमबत्तियाँ लीं और उन की खोज में सराय से निकल पड़े। ग्यारह बजे ये खोए हुए लोग आ पहुँचे। तब हमें उन के साथ खाना खाने का मौक़ा मिला, और हम ने शान्ति-पूर्वक रात बिताई। दूसरे दिन हम सराय में ही पड़े रहे, क्योंकि ३२ मील की यात्रा की थकावट के कारण आगे बढ़ने की हिम्मत न हुई।

हिन्दू व्यापारी

यहाँ से चल कर हम लोग 'हैबक' में ठहरे। रास्ते में हमें 'ग़ोर' मिला। यहीं से मुहम्मद ग़ोरी ने हिन्दुस्थान पर हमला किया था। आज कल वह उजाड़ पड़ा था। यहाँ सिर्फ छोटी छोटी देहाती झोपड़ियाँ खड़ी थीं। यह जगह बिल्कुल

उपजाऊ नहीं थी; क़रीब क़रीब वीरान थी। इसी से तो मुहम्मद ग़ोरी को हिन्दुस्थान की ज़मीन पर आक्रमण और अधिकार करने का प्रलोभन हुआ था। 'हैबक' बड़ा तिजारती शहर है। काबुल के बाद इसी का नम्बर आता है। किसी ज़माने में यहाँ रेशम का व्यवसाय .खूब होता था। इस बात के हम ने काफ़ी प्रमाण देखे। यहाँ पर बहुत से हिन्दू और सिक्ख व्यापारी रहते थे। ज्योंहीं उन्हों ने सुना कि हम वहाँ पहुँचे, वे तुरन्त हम से मिलने आए। वे लोग बहुत अच्छी हालत में थे। उन्हें अफ़ग़ान सरकार के व्यवहार पर पूरा सन्तोष था। उन्हें अफ़ग़ान नागरिक के सभी अधिकार प्राप्त थे। अफ़ग़ान लोग तो उन्हें अपने रिश्ते-दार समझते थे। उन में से कुछ तो लेन-देन करते थे और कुछ काबुल और उत्तर में 'मज़ार शरीफ़' के दर्मियान थोक-व्यापार करते थे। उन्हों ने भाइयों की भांति हमारी आव-भगत की और हम से प्रार्थना की कि कम-से-कम दो हफ्ते वहाँ रुक जायँ। गोकि हम उन का यह प्रस्ताव स्वीकार न कर सके, लेकिन दो दिन और ठहर कर हम ने उन्हें सन्तुष्ट किया।

लेखक के कोट की बिक्री

हमारे हिन्दू मित्र चलते समय हमें विदा करने आए। हम ने फिर से पहाड़ों पर चढ़ना आरम्भ किया। दो साधारण मुक़ाम करने के बाद हम ने असली अफ़ग़ानिस्तान और पहाड़ दोनों छोड़ दिए। अब हम ने अफ़ग़ानी-तुर्किस्तान में प्रवेश किया। अफ़ग़ानिस्तान के इस हिस्से में चावल और गेहूँ .खूब पैदा होते हैं। तश्करगाँ और मज़ारशरीफ़, इस के दो बड़े प्रसिद्ध व्यापारिक और व्यावसायिक शहर हैं। तश्करगाँ बहुत ही सुन्दर शहर है। इस में लम्बे-चौड़े बाज़ार हैं ये सभी छतदार थे। यह शहर अफ़ग़ानिस्तान की अपेक्षा फ़ारस के शहरों से ज़्यादा मिलता

जुलता था। यहाँ हर चीज़ बहुत सस्ती थी। फल तो बहुत अधिक मिलते हैं। दो पैसे के एक सेर ताज़े अंगूर मिलते हैं। सेब भी बहुत सस्ते और बढ़िया होते हैं। शहर के रहने वाले बढ़िया कारचोबी का काम करते हैं। यहाँ एक ओर तो बदख़्शाँ से और दूसरी ओर रूसी तुर्किस्तान से चाय और चीनी की अच्छी तिज़ारत होती है। यहाँ के रहने वाले ज्यादतर 'उजबग' और 'तज़क़' नस्ल के हैं। अफ़ग़ान तो अस्सी आदमियों पीछे सिर्फ एक के हिसाब से रहते हैं। रुपए की कमी से इन पँक्तियों का लेखक यहां पर अपना २५ रुपए का गर्म कोट ८ काबुली रुपयों में बेच डालने पर मज़बूर हुआ। (ये ८ रुपए हिन्दुस्थान के ६ रुपयों के बराबर होते हैं।) अपनी ज़रूरत के कारण ही ऐसा करना पड़ा था। जिस समय मैं अपने वतन (बीकानेर) से चला था, मेरे पास सिर्फ ५९ रुपए थें। तश्करगाँ में भी कुछ सिख और हिन्दू व्यापारी रहते थे। दूसरे दिन सवेरे जब हम चलने की तैयारी कर रहे थे, वे बड़े प्रेम से दौड़ते आए और हम से अपनी यात्रा दूसरे दिन के लिए स्थगित करने का आग्रह करने लगे। हम ने इसे स्वीकार कर लिया। हमारे 'हैबक'-निवासी मित्रों की अपेक्षा यह लोग अधिक समृद्धिशाली थे। सच तो यह है कि बुख़ारा और तश्करगाँ के बाज़ार इन्हीं के हाथ में हैं। इन्हों ने भी अमीर की सरकार के प्रति कृतज्ञता प्रकट की और कहा कि 'वह हमारे साथ निष्पक्ष व्यवहार करती है'। दूसरे दिन रुक जाने से हम इस बात के क़ायल हो गए कि यह शहर जैसा हम पहले समझते थे, उस की अपेक्षा दसगुना अधिक सुन्दर था। यहाँ के हर मकान से हो कर ताजे पानी की एक छोटी सोती गुज़रती है। यह सब सोतियाँ 'खुल्म' नदी में गिरती हैं। यहाँ बहुत से अप-टु-डेट (नये से नये ढङ्ग के) होटल भी दिखे। अगर यहाँ छतदार बाज़ार न होते तो इस शहर के पूरी तरह से आज कल

के नए ढङ्ग के होने में कोई कमी न थी। यहाँ पर हम ने एक विचित्रता देखी। हर मकान के ऊपर एक एक गुम्बद बना था। सारा शहर ऐसा देख पड़ता था, मानों बहुत सी मस्जिदें इकट्ठी बनाई गई हों। ज़्यादा पूछ-ताछ करने पर मालूम हुआ कि इन के बनाए जाने की वजह यह थी कि यहाँ बर्फ़ लगातार और बहुत पड़ा करती है। और इन गुम्बदों के होने से मकान को नुक्सान नहीं पहुँचने पाता।

'बोल्शेविक'-राजदूत से भेंट

तख्क़रगाँ से चल कर तुर्किस्तान के उपजाऊ और अत्यन्त आकर्षक मैदानों पर सफ़र करते हुए हम मज़ारशरीफ़ पहुँचे। यह शहर किसी दूसरे शहर से घट कर न था। यहाँ अफ़ग़ान सरकार की उत्तरी राजधानी तो थी ही, इस के अलावा 'अली' की समाधि भी थी। इस के दर्शन करने हर साल हज़ारों आदमी आया करते थे। यह शहर तख्क़रगां से कई बातों में मिलता-जुलता था। बुख़ारा से भी यह बहुत मिलता था। यहां फलों के अच्छे-अच्छे बागीचे हैं, और ख़रबूज़े तो यहां के बहुत मशहूर हैं। जिन ख़रबूज़ों का दाम पेशावर में एक-एक रुपया था, वे ही यहां एक पैसे से भी कम में मिल जाते थे। यहां चाय के अलावा और सब चीजें बहुत सस्ती थीं। चाय सारे अफ़ग़ानिस्तान में मँहगी बिकती है। अपने यहाँ पहुँचने के दूसरे दिन हमें अफ़ग़ान गवर्नर, आग़ा अब्दुल-हादी (जो आज कल इङ्गलैण्ड में अफ़ग़ान-राजदूत हैं) ने बुलवा भेजा। उन्हों ने भी हमें अफ़ग़ानिस्तान में मिल सकने वाली सुविधाओं के विषय में वही पुराना उपदेश दिया। लेकिन जब उन्हें मालूम हुआ कि हम मानने वाले न थे तो उन्हों ने अफ़ग़ान अफ़सरों के नाम हुक्म लिख दिया कि वे हमें उस देश की

सीमा पार कर लेने देंगे। हाँ, हम में से एक आदमी, जिस का नाम सिकन्दर था, रोक लिया गया। बाद में मालूम हुआ कि यह ख़ुफ़िया पुलिस का आदमी था। हम ने इस बात का विरोध न किया। हमें तो अपने गिरोह में ऐसा आदमी पाकर बहुत आश्चर्य हुआ। हमारे दर्मियान एक ऐसा दल था, जो यह चाहता था कि मुसलमानों की सत्ता सारे संसार में हो जाय। उन लोगों को यह सिकन्दर ख़ूब जोश दिखाता था। उस के लिये, इस से बढ़ कर छिपने की अच्छी जगह और हो भी क्या सकती थी? चलते समय उस के स्थान पर हमें एक ऐसा तुर्क मिल गया जो फ़ारसी, तुर्कमानी और रूसी भाषा जानता था। हम ने बड़ी प्रसन्नता के साथ इस स्थानापन्न व्यक्ति को स्वीकार कर लिया। अफ़ग़ान अफ़सरों से 'पासपोर्ट' मिल जाने के बाद रूसी राजदूत के हुक्म मिलने का काम शेष रह गया। हम में से चार आदमी राजदूत के पास जाने के लिए चुने गए। इस के पहले बोलशेविक नामों के सुनने और अंगरेज़ी अख़बारों में छपे हुए व्यङ्ग चित्रों को देखने के कारण हम लोगों का यह ख़्याल बँध गया था कि बोल्शेविक लोग ज़रूर कोई उजड्ड, गवाँर और भयानक जन्तु होंगे। जैसे जैसे हम उन के राजदूत की ओर बढ़ते जाते थे, हमारी उत्सुकता भी बढ़ती जाती थी। कुछ लोग तो यह ख्याल करते थे कि वे बहुत असभ्य और रूखे जीव होंगे। आख़िरकार हम बोल्शेविकों के स्थान पर पहुँचे। एक पचीस वर्ष के नौजवान ने अंग्रेज़ी शब्दों में हमारा स्वागत किया और हम से हाथ मिलाया। वह 'बोल्शेविक'--टोप लगाए और लम्बे जूते तथा फ़ौजी पोशाक पहने था। हम ने समझा कि वह कोई नौकर होगा, और किसी-किसी ने अनुमान किया कि वह सैनिक होगा। हम में से एक ने कहा,—"श्रीमन्, (सर), हम माननीय रूसी राजदूत से मिलना चाहते हैं।"

वह,—"कामरेड (भाइयो) 'सर' न कहिए, लेकिन 'काम-रेड'(भाई) कहिए। मैं ही वह आदमी हूँ,जिस की आप को तलाश है। मैं 'दी रशन सोशलिस्ट फेडरल सोवियट रिपब्लिक' (आर. एस. एफ़. एस. आर.) अर्थात् रूसी-साम्यवादी—संयुक्त सोवि-यट-प्रजातन्त्र—का प्रतिनिधि हूँ। रूस के किसानों और मज़दूरों की ओर से मैं आप का स्वागत करता हूँ।" यह सुनते ही हम आश्चर्य की भँवर में चक्कर खाने लगे। भला वह राजदूत कैसे हो सकता था ? क्योंकर वह हम .गुलामों को इस तरह सम्बो-धित कर सकता था ? हमारे हिन्दुस्थान के श्वेत महा प्रभुओं की तरह वह भी तो गोरा था ! इस विकट समस्या से हम जल्दी छुटकारा न पा सके। हम ने सोचा, "क्या यह सत्य है , या हम स्वप्न देख रहे हैं ?"

वह बोला,—"भाइयो ! आप इस तरह आश्चर्य क्यों करते हो ? आप जवाब क्यों नहीं देते ? मैं कहता हूँ कि वह सरकार जो रूस के मज़दूरों और किसानों की सरकार है, उसी की ओर से मैं आप का स्वागत करता हूँ।"

हम लोगों ने अपने होश-हवास दुरुस्त किए और उत्तर दियाः—

" 'सर'......नहीं.......कामरेड (भाई,) हम आप को इस कृपा के लिए धन्यवाद देते हैं। हम आप को पहचान न सके, क्योंकि हमारे देश में 'गोरे मालिक' लोग हम से और ही तरह से व्यवहार करते हैं।"

राजदूत,—"कामरेड, अब आप की जंज़ीरें कट गईं। हम सब समान हैं। हमारे और आप के लोगों में एक बात एक सी है। और वह यह कि हमारे लोगों पर तो 'ज़ार' (रूस के बादशाह) का अत्याचार और दमन होता था और आप लोग अपने ही घर में कुचले जाते हैं।"

इस के बाद राजदूत हमें अपने मकान ले गए। यह मकान बँगला जैसा देख पड़ता था। वहाँ उन्हों ने हमारा परिचय कई जवान पुरुषों और स्त्रियों से करवाया। उन्हों ने हमारे प्रति और भी अधिक नम्र और भाईचारे के भाव दिखाए। इस पर हमें अत्यन्त आश्चर्य हुआ। हमें चाय पिलाई गई। मौक़ा पा कर हम लोगों ने अपने असली इरादे की बात छेड़ी। उन्हों ने (राजदूत ने) हमें एक अधिकार-पत्र दिया और हमारे साथ एक राह दिखाने वाला कर दिया। हम .खुशी .खुशी लौटे। वहाँ अपने साथियों को हुक्म मिल जाने का हाल कह सुनाया। इस्लाम की ही प्रभुता चाहने वाला दल टर्की जाना चाहता था। यह ख़बर सुन कर उस में विरोध के चिन्ह देख पड़े। उन्हों ने हम पर यह दोष लगाया कि उन लोगों की राय ठीक तौर से नहीं प्रकट की गई। हम ने यह समझाने का बहुत प्रयत्न किया कि अपने अधिकार से परे हुक्म देने की ताक़त रूसी राजदूत को नहीं थी। उन्हें हमारी दलीलें पसन्द न आईं। अब उन्हों ने अपने प्रतिनिधि राजदूत के पास भेजे। उस ने भी वही बात कही। इस पर इन लोगों ने समझा कि शायद कोई षड्यन्त्र रचा गया है। जब उन के प्रतिनिधि लोग लौटे और उन्हों ने अपनी हालत का वर्णन किया तो सारे दल ने हम पर दोष लगाया कि रूसी राजदूत का दिमाग हमीं ने दूषित कर दिया। लेकिन इन बातों में कुछ सार न था। अब इन लोगों की धर्मान्धता ने गन्दी गन्दी गालियाँ सुनाने का 'गौरव' प्राप्त किया; हम पर लगातार गालियों की बौछारें होने लगीं; और कुफ़्र (विधर्मी होने) का फ़तवा ज़ारी किया गया। यह सब हम ने धैर्य के साथ सहा, और उन से कहा कि आप लोग या तो हिन्दुस्थान लौट जाइये या अफ़ग़ानिस्तान ही में रह जाइये। लेकिन वे किसी बात पर राज़ी न हुए। वे हमारे साथ रवाना

हुए, लेकिन तमाम राह हमें पागलों की तरह कोसते रहे। हमें इस बात का ख़्याल हुआ कि उस समय हम अफ़ग़ानिस्तान में थे और वहाँ हमारे आपसी विरोध का बहुत बुरा असर पड़ेगा। हमें सिर्फ़ एक बात का डर था कि कहीं यहीं रोक न लिए जायँ। हमने उन लोगों के प्रदान किए हुए गन्दे विशेषणों की कुछ भी परवा न की। दो एक दिन में हम बलख़ के खण्डहर पार कर गए और 'आक्सस' नदी के अफ़ग़ानी घाट 'पलकेरसर' पहुँचे।

सिंहावलोकन

आक्सस की दूसरी ओर जाने के पहले हमें यह उचित मालूम होता है कि अपनी पिछली बातों को याद करें और उन प्रभावों का वर्णन करें जो उस छोटे से पहाड़ी देश ने हमारे दिलों पर डाले थे और जिस ने दो महाद्वीप जैसे बड़े मुल्कों के बीच मध्यवर्ती राष्ट्र का बहुत मशहूर ऐतिहासिक 'पार्ट' अदा किया था। बहुत सम्भव है कि नष्ट हो जाने के पहले यह फिर से भी बहुत से भाग्य पलट देने वाले 'पार्ट' खेले।

राज्य--शासन

अफ़ग़ान सरकार के ढङ्ग और अविश्वास के कारण मुहाजिरीन को यह देश बहुत परिमित समय के भीतर ही छोड़ना पड़ा। हमें किसी तरह की सुविधा न मिली कि वहां की राजनीतिक और शिक्षा संस्थाओं के विषय में कुछ जानकारी हासिल करते। हम में से किसी को भी काबुल में तीन दिनों से अधिक रहने का सौभाग्य प्राप्त न हुआ। इसी कारण हम अफ़ग़ान-शासन पद्धति का न तो कुछ ज्ञान ही प्राप्त कर सके और न उस के विषय में कोई राय ही क़ायम कर सके। इस के बाद काबुल के बाहर हम कुछ प्रसिद्ध आदमियों से मिले। उन

से हमें मालूम हुआ कि अफ़ग़ानिस्तान में जागीरदारी का नाम तक नहीं है। और देश का शासन मिर्ज़ा और सूबेदारों के ज़रिए होता है। इन को अमीर ही नियुक्त किया करते हैं और इन्हीं पर शासन की ज़िम्मेदारी होती है। हमें यह भी पता चला कि अमीर ख़ुदमुख़्तार, लेकिन उदार, बादशाह हैं। उन को सलाह देने के लिए एक कौन्सिल है। यह भिन्न भिन्न विभागों के प्रधान अफ़सरों से मिल कर बनी है। यह कौन्सिल एक तरह से नक़ली 'कैबिनेट' (मन्त्रि-मण्डल) की तरह है और इस के सभापति, सदा के लिए, अमीर ही होते हैं।

प्राकृतिक-साधन और आवागमन

अफ़ग़ानिस्तान आर्थिक वस्तुओं (खनिज आदि का) ऐसा ख़ज़ाना है, जो अभी तक छुआ नहीं गया। इस की खदानों से निकलने वाली चीजें बहुत ज़्यादा हैं, लेकिन अभी तक न तो इन का पता लग पाया है और न ये खोदी ही गई हैं। यहाँ की अबरक़ की खानें तो अपना सानी नहीं रखतीं। यहां लोहा, टीन, सीसा और कोयला भी बहुत अधिक है। यहां उत्तर में ऐसे मैदान हैं जिन में रूई भी पैदा होती है। अफ़ग़ानिस्तान में कारीगरी का एक भी केन्द्र नहीं है। यह खेती और चरागाहों का देश है। कुछ लोग कपड़ा बुनने या औज़ार बनाने की दस्तकारी किया करते हैं। हज़ारहाँ ऐसे आदमी हैं, जिन्हों ने अभी तक आज कल की कारीगरी की चीज़ें छुईं तक नहीं।

आने-जाने के लिए अफ़ग़ानिस्तान में अब भी वही पुराने सँकरे पहाड़ी रास्ते हैं। चीजें ले आने और ले जाने के लिए यहाँ ख़च्चर और गधे ख़ास जानवर हैं। यहाँ न तो रेलें हैं और न अच्छी सड़कें। १९२० तक देश के मशहूर मशहूर शहरों के बीच तार भी नहीं लगे थे। हर जगह 'टेलीफ़ोन' लगे थे। मिर्ज़ा लोगों को 'टिलफ़ून' का बहुत शौक है।

यहां के आदमी

आपसी व्यवहार की दृष्टि से देश के अन्दर और सरहद्दी अफ़ग़ानों में बहुत ही अन्तर है। बहादुरी और फ़ौजी प्रकृति में दोनों एक से हैं। देश के अन्दर वाले लोग सरहद वालों की अपेक्षा कहीं ज़्यादा समझदार और शिष्ट होते हैं। यहाँ की भौगोलिक स्थिति ऐसी है, जिस के कारण लोग बाहर के हमलों से बिल्कुल निश्चिन्त हैं। जैसा कि ऊपर कह आए हैं, यहाँ का ख़ास पेशा खेती है। यहाँ फल भी बहुत होते हैं। यहाँ का चावल तो अन्य किसी भी देश के चावल को मात कर देता है। गोकि अफ़ग़ान लोग सुन्नी हैं, लेकिन इन्हें धर्म की अपेक्षा देश का ध्यान अधिक रहता है। वे इस बात का थोथापन बड़ी जल्दी ताड़ लेते हैं 'कि मैं पहले मुसलमान हूँ और बाद में अफ़ग़ान।' उन के विचार भीतर-बाहर से पूरे राष्ट्रीय हैं। वे अपने लिए ढाई चावल की खिचड़ी अलग पकाने वालों में से नहीं हैं। बहुत हद तक वे आरम्भ काल की 'कम्यूनिज़्म' के आधार पर काम करते हैं।

अमीर

कामरेड शिशेरिन (Chicherin) ने इटली के बादशाह की प्रशंसा की थी। उस के दल वालों ने उसे क्षमा कर दिया। तो क्या लेखक को भी उसी के से विचार वाले कामरेड अफ़ग़ान-अमीर की प्रशंसा करने पर उस (शिशेरिन) की भांति क्षमा न करेंगे? यदि इटली का राजा साम्यवादी प्रजातन्त्र का सभापति स्वीकार किया जा सकता है तो प्रजातंत्रवादी अमीर अमानुल्ला भी अपने देश में उसी पद के अधिकारी हैं। अमीर सादी पुश्ती पहना करते हैं, और बहुत ही सीधे आदमी हैं। जब हम ने उन्हें देखा था तो यह ख़्याल तक न हुआ था कि वे

ही अमीर होंगे। उन के आस-पास ज़ाहिरा तौर पर दिखावे या सजधज का कोई चिन्ह न था। वे एक सादी सफेद पोशाक पहने और काले बालों की टोपी लगाए हुए थे। हमारे पहुँचने पर उन्हों ने जिस प्रकार हम से बात-चीत की थी उस से बना-वटीपन या किसी तरह की रुखाई नहीं जान पड़ी। उन के 'भाई' कहने ने तो हमारे दिलों में घर कर लिया। एक मामूली अफ़सर से भी हिन्दुस्थान में इस प्रकार के व्यवहार की आशा नहीं की जा सकती। रेल के टिकट बाबुओं या गार्डों की शरारतें फ़ारस के 'शाह काजरों' और 'काज कुलाहों' की बदमाशियों को मात कर देती हैं। वर्तमान अमीर की हुकूमत में अफ़ग़ान सरकार देश के सभी कुदरती साधनों की तरक्की कर रही है और उन्हें ठीक रास्ते पर ला रही है। कई बार अमीर यह कह चुके हैं कि अगर लोग चाहें तो वे अफ़ग़ानिस्तान को प्रजातंत्र राज्य कर दें। ईमानदारी की बात तो यह है कि अमीर की सादगी हमें बहुत पसन्द आई। हमारे साथ ऊपर बताए हुए ढङ्ग से व्यव-हार करने में अमीर की सरकार कहाँ तक ठीक थी, इस बात की जाँच करने के लिए यह ज़रूरी है कि उन परिस्थियों की अच्छी तरह पड़ताल की जाय, जिन के कारण वे ऐसा करने पर मज़बूर हुए थे। वे परिस्थितियाँ इस प्रकार थीं:—(१) अमीर की सरकार अपने लोगों के राष्ट्रीय विचार बदल कर उन्हें केवल मुसलमानी सत्तावादी नहीं बनने देना चाहती थी, और मुहाजिर तो इसी मुस्लिम सत्ता के लिए आन्दोलन करने वालों में से थे। फिर भला हम लोगों के साथ ऐसा व्यवहार क्यों अनुचित कहा जा सकता है? (२) हिज़रत जैसे सामुहिक आन्दोलन में बहुत से ख़ुफ़िया विभाग के आदमी छिप कर अफ़ग़ानिस्तान पहुँच गए थे। अगर बहुत सख़्त और पूरी रखवाली न की जाती तो यह लोग नहीं फँसते। इसी बात पर कैद किया जाना

उचित कहा जा सकता है। (३) बहुत से मुहाजिरीन ने अफ़ग़ान सरकार के प्रति समझौता न किया जा सकने वाला बहुत विरोधी ढङ्ग अख़्तियार कर रखा था। ख़ुद हमीं ने एक के बाद दूसरी अन्तिम चेतावनियाँ दीं थीं और उन में भी इस तरह के सख़्त जुमले लिखे थे कि 'दुनियां में कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो हमें तुर्किस्तान जाने से रोक सके।' 'अमीर की सरकार मक्कार है' आदि। इस प्रकार की निन्दाएँ हम ने अपने मेज़बान को-उस मुल्क के बादशाह को सुनायी थीं। भला हमारे पवित्र हिन्दुस्थान में ऐसी बातें कभी क्षमा की जा सकती हैं ?



दूसरा अध्याय

तुर्किस्तान

बोल्शेविक देश

जहाँ पर एशिया और यूरोप मिलते हैं, उस स्थान पर (यूराल नदी के किनारे) 'ओरेनबर्ग' के दो घाट बहुत मशहूर हैं। ठीक इन्हीं की तरह यहाँ पर अफ़ग़ानिस्तान के 'पलकेरसर' और रूस के 'तरमीज़' नामी घाट बहुत प्रसिद्ध हैं। 'पलकेरसर' में मकान नहीं हैं, सिर्फ़ झोपड़े हैं। लेकिन 'तरमीज़' में जो ठीक इस के सामने है, गिर्जेघर और मीनारें हैं। ये सब बहुत ही अनोखी और भली मालूम होती हैं। हम ने दो नावें किराए पर कीं और बड़ी प्रसन्नता के साथ अफ़ग़ान देश से विदाई ली। यहाँ पर आक्सस बहुत कम गहरी थी। हमें तरमीज़ पहुँचने में कोई दो घण्टे लगे। यहाँ पर हमारे मेज़बान लोग खड़े हमारी राह देख रहे थे और ज्योंही हम दिखाई पड़ने लगे, उन्हों ने रूसी भाषा में चिल्लाना शुरू किया:—

अत्याचार से पीड़ितों की दृढ़ता युग-युग जिए।
आज़ाद हिन्दुस्थान के लोग चिरजीवी हों।
स्वतन्त्र भारत की उम्र बहुत बड़ी हो।

इसी तरह के और भी बहुत से नारे उन लोगों ने लगाए। परन्तु यह थे रूसी भाषा में हम इन्हें समझ न सके। इतना हम ने ज़रूर समझा कि वे हमें प्रोत्साहित कर रहे थे। हम ने भी 'वन्देमातरम्' चिल्लाना शुरू किया, पर हमारे कट्टर

धर्मान्ध लोगों की 'अल्लाहो-अकबर' की आवाज़ से नदी गूँज उठी। ज्यों ही हम किनारे पर उतरे हम को फ़ौजी ढङ्ग से सलाम किया गया। हमारे मेज़बान अपने साथ बहुत सी गाड़ियां लेते आए थे, क्यों कि उन का ख़्याल था कि भारत ऐसे दूर देश से आने वाले लोग साथ में बहुत सा सामान ज़रूर लाए होंगे। लेकिन हमारे पास तो कुछ न था, इस के विपरीत हमें इन की अधिक ज़रूरत थी। यहाँ से चल कर एक लम्बा दलदल पार करने के बाद हम लोग गाँव में पहुँचे। यह एक बड़ा क़स्बा है। राज्यक्रान्ति के होते हुए भी यह बिल्कुल नए ढंग का उन्नतिशील शहर है। इस में बहुत से ऊँचे-ऊँचे मकान हैं। सड़कें चौड़ी और साफ़-सुथरी हैं। यहाँ की दूकानें ठीक वैसी ही हैं जैसी कि कराँची या बम्बई में हैं। सड़क के दोनों किनारों पर एक क़तार में बाक़ायदा खड़े लोग हमें फ़ौजी ढंग से सलाम कर रहे थे। 'बैंड' बज रहा था। उन के पीछे अच्छी तरह संगठित और ख़ूब जोश से भरी हुई भीड़ लाल झण्डे लिए खड़ी थी। मज़दूरों के अन्तर-राष्ट्रीय गान गाए जा रहे थे। हर सौ क़दम पर रूसी और बुख़ारी लोग रूसी और फ़ारसी में व्याख्यान दे रहे थे। वे सताए जाने वालों की सहन-शीलता पर ख़ूब ज़ोर दे रहे थे। उन की देखा-देखी हम लोगों ने भी अँग्रेज़ी और फ़ारसी भाषाओं में उन को उत्तर दिए। रूसी मज़दूरों और किसानों ने जो कुछ हासिल किया था उस के लिए हम ने उन की प्रशंसा की और 'ज़ार' के ज़ुल्म सहने वाले देश में दरअस्ल प्रजातन्त्र स्थापित करने के लिए उन की बहुत तारीफ़ की। यह जलूस बहुत बड़ा था। हमारे आगे-आगे फ़ौजी और शहरी दोनों तरह के बैंड की क़तारें चल रही थीं। इस तरह बड़ी शान से हम लोग छावनी पहुँचे। रास्ते में हमें यहाँ के प्रधान-अध्यक्ष अपने सहकारियों के साथ मिले।

'सोवियट' सरकार की ओर से वह .खुद हमारा स्वागत करने आए थे। उन्हों ने रूसी भाषा में एक लम्बा व्याख्यान दिया। उन के दुभाषिए ने इस भाषण का अनुवाद अँगरेज़ी में कर दिया। इस का सारांश यह थाः—

" 'कामरेड' लोग! शायद आप को मालूम होगा, पहले हमारे ऊपर 'ज़ार' राज करता था। उस की हुकूमत में ज़िन्दगी मुहाल थी। उन दिनों हमारे बहुत से साथी या तो मार डाले गए या उन्हें साइबेरिया की कड़ी सर्दी में मर जाने के लिए देश से निकाल दिया गया। मित्रो! शायद आप ज़ानते हों, कोई ऐसा ज़ुल्म न था, जो हमारे साथियों के ऊपर क़ज़्ज़ाक़ों (Cossacks) ने न किया हो। हम ने बहुत बे-इज़्ज़तियाँ बर्दाश्त की हैं, और ऐसी तकलीफ़ें झेली हैं जिन्हें मनुष्य .ख्याल तक में नहीं ला सकते। उस समय हमारी ऐसी दशा थी। लेकिन, किसानों और मज़दूरों की सम्मिलित कोशिशों के कारण आज हम अपने भाग्य और इस महान देश के स्वयं मालिक हैं। परन्तु, हमारी शत्रु-विरोधिनी-राज्यक्रान्ति अभी तक चारों ओर काम कर रही है। हम चारों तरफ से घिरे हुए हैं। लेकिन अब बहुत दिन न लगेंगे, जब हमारे प्रजातंत्र की जीत होगी और सब मुश्किलें दूर हो जायँगी। मित्रो! हम अपना हाथ ज़मीन के किसी भी कोने में सताए जाने वालों की मदद के लिए बढ़ाए हुए हैं। इस में हमारा कोई अपना स्वार्थ नहीं है। ऐसा करने के लिए हम अपने अन्तरराष्ट्रीय सिद्धान्तों के कारण प्रतिज्ञा कर चुके हैं। चूँकि बुख़ारा में क्रांति मची हुई है। इस कारण हम लोग बाक़ी देश से इस वक्त अलग कर दिए गए हैं। इतना सब होने पर भी हम आप को अपने देश के भीतरी हिस्से में भेजने में कुछ उठा न रखेंगे। जिस से वहाँ

जा कर आप ग़रीबों के किए हुए काम को देखें और उस की प्रशंसा करें।"

इस प्रकार उन का व्याख्यान समाप्त हुआ। हम ने इस का भरसक उचित उत्तर दिया। इस के बाद वे लोग हमें तीन बारिकों (लम्बे कमरों) में ले गए। यहाँ बहुत से प्रचार-सम्बन्धी इश्तिहार चिपकाए हुए थे। दीवालों पर लेनिन, ट्राट्स्की, ज़िनोव्यू, कमेरव और दूसरे राज्यक्रांति के वीरों के चित्र टँगे थे।

फूट

खाने के लिए हमें भेड़ का गोश्त, मक्खन, चाय और सफ़ेद रोटी दी गई। हम राज्य के अतिथि थे, इसी से हमें कुछ काम न करना पड़ता था। इस से हम में से बहुतों को कई दृष्टियों से लाभ हुआ। .खेलेब (सफ़ेद रोटी) और लपुश्का (पेशावरी रोटी) खाने को .खूब मिलती थी, पर काम कुछ न करना पड़ता था। धर्मान्धता और अहङ्कार का हमारे अन्दर प्रवेश हुआ। अब पूरी आज़ादी थी, अब न तो अफ़ग़ान मिर्ज़ा लोगों का डर था और न उनकी रोक टोक ही थी। इससे कुछ लोग नियमों की ज़रा भी परवाह न करने लगे। 'जो चाहें वह करने की आज़ादी होनी चाहिए', 'निर्वासित-समिति का कुछ दबाव न रहना चाहिए'—इस तरह की बातें बहुत से लोग बकने लगे। हमारे बहुत प्रयत्न करने पर भी समझदारों से धर्मान्ध लोग अलग हो गए। हमने हिन्दुस्थान के नाम पर, समझदारी के नाम पर, उन से मिन्नतें कीं कि बोल्शेविकों को यह दिखा कर हिन्दुस्थान का नाम बदनाम न करें कि हम आपस में ही बँटे हुए हैं। लेकिन धर्मान्धता किस की परवा करती है? आख़िर हम में फूट हो ही गई। आमने-सामने दो दल हो गए। एक दल दूसरे पर बेहद

नाराज़ था। इस्लामी सत्ता बढ़ाने की प्रवृत्ति सीमा फाँद गई। वे लोग अफ़सरों के पास गए। उनसे प्रार्थना की कि हमें आगे बढ़ने और अनातोलिया (टर्की) जाने की इजाज़त दे दीजिए। अफ़सरों ने उन्हें समझाया कि बुखारा में क्रान्ति हो रही है, इससे आमद-रफ्त बिल्कुल बन्द हो गई है। रेल की सड़क तोड़ दी गई है। और जब तक किनारे सुरक्षित न हो जाँय 'स्टीमर' नहीं आ सकते। लेकिन धर्मान्धों की समझ में ये बातें न आयीं। यहाँ भी उन्हें षड्यंत्र की मँहक मालूम हुई और अफ़सरों के इस तरह के व्यवहार की ज़िम्मेदारी हमारे (दूसरे दल) सर पर लादी गई।

धर्मान्धों की धमकी

धर्मान्धों ने यह धमकी देना शुरू किया कि अगर उन्हें आगे जाने का हुक्म न मिला तो वे खुल्लम खुल्ला हम से भिड़ जायँगे। हम कायर तो नहीं थे, लेकिन हम ने हिन्दुस्थान के अच्छे नाम पर धब्बा लगाना ठीक न समझा। यह हमारे मुल्क के हक़ में बहुत बुरा था कि रूसियों को हमारे आपसी झगड़े का पता लग जाय। हमने अपने दोस्तों से लिखा पढ़ी शुरू की और उन्हें यह समझाने का यत्न किया कि आगे जाने का रास्ता घिरा हुआ था। लेकिन धर्मान्ध किसी की भी नहीं सुनता। आखिर-कार हमें अध्यक्ष के पास जाना पड़ा और उनसे साफ़-साफ़ कहना पड़ा कि हमारे गिरोह में दो दल थे। उन में से एक टर्की जाना और दूसरा 'सोवियट' शासन का अध्ययन करना चाहता था। लेकिन प्रेसीडेंट को यह बात पहले से ही ज्ञात थी। उन लोगों ने उन्हें पहले से परेशान कर रखा था। प्रेसीडेंट ने हमें फिर से समझाया कि अगर वे लोग नावों पर रवाना होंगे, और कहीं तुर्कमान लोग उन्हें क़ैद कर लेंगे या मार डालेंगे तो इन सब की ज़िम्मेदारी अधिकारियों पर होगी। यही बात हमने इस दल के

नेता से फिर सुनाई। लेकिन कोई शिक्षा लाभदायक न हुई।

दूसरे दिन वे फिर प्रेसीडेंट के पास गए और उनसे स्पष्ट कहा कि तुर्कमान मुसल्मान हैं। इस लिए उन्हें अपने भाइयों से डरने की कोई वजह नहीं जान पड़ती। जब अपने विरोधी आन्दोलन करने वाले तुर्कमानों को अध्यक्ष ने उन लोगों के मुँह से 'भाई' कहता हुआ सुना तो उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। आख़िरकार उन्होंने उन लोगों को ख़ुद अपनी ज़िम्मेदारी पर यात्रा करने की इजाज़त दी। अब हमारी बारी आई कि प्रेसीडेंट के पास जायँ और उनसे कहें कि हम लोग उन लोगों के साथ नहीं जायँगे, और रास्ता साफ़ हो जाने तक ठहरे रहेंगे। लेकिन अध्यक्ष ने हमारी राय न मानी। उन्होंने कहा कि अगर हम लोग रोक लिए गए और दूसरा दल तुर्कमानों के चंगुल में फँस गया तो इस बात का असर हिन्दुस्थान में रूसियों के ख़िलाफ़ होगा। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि हिन्दुस्थान के लोग यह सोचेंगे कि रूस वालों ने इन्हें मार डाला होगा; क्योंकि ये लोग इस्लामी सत्तावादी थे। अस्तु, हमारी क़िस्मत उनकी क़िस्मत से अलग न हो सकी। हमने उन्हीं के साथ जाने की तैयारी की। हमें कुछ दिन और रुकना पड़ा, क्यों कि नावें वहाँ मौजूद न थीं। इस विलम्ब के कारण हमें इस बात का मौका मिला कि रूसी लोगों से मिलें और वहाँ की हालत जानें। सब से पहली बात हमने यह देखी कि बोल्शेविकों की फ़ौज की तैयारी ठीक न थी। सैनिकों की पोशाक दुरुस्त न थी। बहुतों की वर्दियाँ ढीली ढाली थीं और उन के कपड़े के टोप भौहों तक खिसक रहे थे। लेकिन बाद में पता चला कि ज़ार की सेना का अधिक हिस्सा तोड़ दिया गया था, और वह फ़ौज मज़दूरों और किसानों की सेना थी। दूसरे यह मालूम हुआ कि लड़ाई के सबब से प्रायः सभी कारीग-

रियाँ नष्ट होगई थीं। इसी से अब-तक अच्छी वर्दियाँ तैयार न कराई जा सकीं। लेकिन इसके छः महीने बाद सारी बातें बदल गईं। ज्यों ही विरोधी-क्रांति कुचल डाली गई, यह फ़ौज, पोशाक संगठन और नियमों की पाबन्दी में किसी से पीछे न रह गई।

क्रान्ति के कुछ कारण

हम लोग एक दिन अध्यक्ष से बातें कर रहे थे। उसी सिलसिले में हम इस क्रान्ति के कारण पूछ बैठे। उन्हों ने कहा, मित्रो ! जैसे जैसे तुम इस देश में प्रवेश करते जाओगे, इस विषय में तुम्हें ज़्यादा ही ज़्यादा मालूम होता जायगा। थोड़े शब्दों में मैं कुछ बातें बताता हूँ। पुरानी हुकूमत के समय यहाँ मामूली आदमियों की हालत बहुत बुरी थी। यह सोचने की बात है कि महायुद्ध के आख़िर के दिनों में यहाँ के किसान किस किस प्रकार जर्मनों से लड़ने के लिए पकड़े गये थे। उनके पास हथियार के नाम पर सिर्फ लाठियाँ थीं ! यह तो साफ़ ज़ाहिर था कि वे जर्मनों का सामना न कर सकते थे और फलतः वे जर्मन मशीनों से भून डाले गये। देश, फ़ौज और किसान सभी शान्ति चाहते थे, लेकिन ज़ार की धर पकड़ जारी थी। यह कैसी दर्दनाक दशा थी कि सिपाही तो खाइयों में पड़े गोलियों और सर्दी से मर रहे थे और अमीर लोग मास्को में भोग--विलास में पड़े, पशैम्पेन (एक प्रकार की क़ीमती शराब) और फ़ारस की बढ़िया पोशाकों में चैन कर रहे थे। गांवों में लोग अन्धकार-पूर्ण और डरावनी ज़िन्दगी बिताते थे, लाखों आदमी अपने रिश्तेदारों के लिए तड़प रहे थे। लेकिन शहरों में शीत-महल और होटल आदि की विषय भोग सम्बन्धी चीज़ों से आँखें चकाचौंध कर रहे थे। मित्रो ! ख़ुद-मोख्तारी तभी तक क़ायम रह सकती है जब तक प्रजा के लोग आँख मूंद कर हुक्म मानते जायँ। सभी हुकूमतें ग़रीबों की सहन

शीलता और उनके कष्ट-सहन पर निर्भर रहती हैं। देखने में चाहे दुःख सदा रहने वाले मालूम पड़ें, लेकिन उनका भी अन्त होता ही है। हमारे देश में इस दुःख का अन्त तभी हुआ जब मेहनत करने वाले लोग सहन करने से लाचार हो गए। इसका अन्त तब हुआ जब बिना सोची विचारी और बेरहमी से ओत-प्रोत हत्याएँ सही न जा सकीं। मज़दूरों के झुण्ड कारखानों से, किसान खेतोंसे, निकल पड़े। सैनिकों और क़ज्ज़ाकों (दक्षिणी रूस की एक लड़ाकू जाति-विशेष) ने जनता का साथ दिया। ज़ार और उनके चापलूस सूखी घास के ढेर की तरह जला दिए गए।"

यह हमारे लिए अच्छा सबक़ था। यहाँ हमने आज़ादी को अपने असली वेश में देखा। ग़रीब होते हुए भी यहाँ के आदमी बहुत ख़ुश थे। क्रान्ति ने उनके दिलों में संतोष भर दिया था। यहाँ ५० भिन्न-भिन्न नस्ल के लोगों में आदमियों का असली भाई-चारा देखा जा सकता था। जाति-पाँत वा धर्म की रुकावटें इन्हें आपस में मिलने से रोकती न थीं। यहाँ का हर आदमी अच्छा व्याख्यान देने वाला बन गया था, हर स्थान पर कोई न कोई मज़दूर, किसान या सैनिक होशियार व्याख्यान देने वाले की भांति बोल रहा था, व्याख्यान क्या थे, मानों सदियों तक रुके हुये नदों में बाढ़ आ गई हो। या रुके हुए नदों के बांध टूट गए हों, और धारा बड़ी तेज़ी से बह निकली हो।

बुख़ारा का पतन

अब यह ख़बर आई कि बुख़ारा वहां के जदीदियों (उन्नतिशील लोगों) के हाथ में आ गया। इसे सुनते ही परेड के मैदान में ख़ूब जलसा मनाया गया। फ़ारसी, रूसी, अङ्गरेजी और तुर्की सब भाषाओं में लोगों के व्याख्यान हुए। बात बात पर व्याख्यान देने वाले लोग अपनी नंगी तलवारें चमकाते थे। इस प्रकार वे

व्याख्याता तो नहीं पर तलवार चलाने वाले अवश्य जान पड़ते थे। इन सब बातों से लोगों के जोश का पता चलता था। न किसी दिवाली में और न दशहरा ही में ऐसा जीयट का दृश्य देखा जा सकता था। यह दृश्य देखते ही बनता था, इसका वर्णन करना तो असम्भव है। इसका सौवाँ हिस्सा भी तो कोई क़लम नहीं लिख सकती। "गिरा अनयन, नयन बिनु बानी।" हर जगह सजावट और इश्तिहार देख पड़ते थे। लोगों में जितना जोश था उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। उस रात सभी नाटकघर व्याख्यान--भवन हो गए थे। एक मिनट के लिए भी गाना बजाना बन्द न हुआ। आतिशबाज़ियों की भी कमी न थी। उस रात को किस नाम से पुकारें, शाहब्रात, दिवाली, होली, दशहरा या उसे और कुछ कहें? क्या उसे नौरोज़ कहें? इनमें से किसी की उस दृश्य और आनन्द से तुलना नहीं की जा सकती थी। सर्वत्र रोशनी और ख़ुशी का प्रकाश फैला हुआ था। बुख़ारा तो छूट गया, लेकिन उसके पास का देश अब भी बुख़ारा के अमीर के तुर्कमान सहायकों के अधिकार में था। तरमीज़ अब भी बाक़ी देश से अलग ही था। हमारे सौतेले भाइयों का धैर्य्य ख़त्म हो गया। बुख़ारा का पतन उनके इस्लामी--सत्तावादी विचारों पर वज्र की तरह गिरा। जदीदियों का बुख़ारा उनकी राय के मुताबिक़ बोल्शेविक-राय वालों के ही अधिकार में चला गया था। सवेरे से शाम तक वे लोग नावें देखने के लिए आदमी तैनात किए रहते। आख़िरकार आक्सस के उत्तरी प्रान्त की ओर से दो नावें कुछ माल के साथ तरमीज़ को आईं। वे लोग दौड़ते हुए आए और हिजरत की बेसब्र सेना को नावों के आने की ख़बर सुनाई। किसी चीज़ का दाम उस की उपलब्धि और मांग पर निर्भर होता है। चूंकि आगे जाने में ख़तरा था, इस लिए नावों का भाड़ा बहुत अधिक हो जाना स्वाभाविक था। दाम

देकर उन लोगों ने नावें तै कीं। तरमीज़ के अफ़सरों ने उन का भाड़ा चुकाया। उन्हों ने हमें 'खेलेव', 'लपुश्का', गोश्त और मक्खन चार दिन के लिए दे दिया; यद्यपि तरमीज़ से 'किरकी' तक जाने में सिर्फ़ दो ही दिन लगते थे।

तरमीज़ से रवानगी

हमारी इच्छा थी कि न जायँ, लेकिन दूसरा चारा न था। हम रूस की राज्यक्रान्ति का अध्ययन करना चाहते थे, और हमारे सौतेले भाइयों को इस बात की जल्दी पड़ी थी कि अनातोलिया पहुँच कर लड़ने वाले तुर्कों के हाथ बटावें। अन्त में समझदारी के ऊपर धर्मान्धता की जीत हुई। हम लोग दूसरी नाव पर चढ़े। आने वाली तबाही की कृपा से हम ने अपनी मौत के बिस्तरे नावों पर रखे। चलते समय हमारे कुछ रूसी कामरेडों की आँखों में आँसू आ गए। क्योंकि वह जानते थे कि हम लोग जान बूझ कर ख़तरे की ओर जा रहे थे। पर, हमें तो ज़िद्दी इस्लामी-सत्तावादियों के कारण मजबूरन ऐसा करना पड़ा था। हम ने तरमीज़ छोड़ा और साथ ही रूसी लोगों के दिलों में हिन्दुस्थान के ख़िलाफ भाव भी छोड़े। शान्त और तेज़ आक्सस पर हमारी नावें चलने लगीं। दूसरे दिन सबेरे हम 'किलीफ़' पहुँचे। यहां हमें कुछ बुख़ारा के मुल्ला लोग मिले। ये लोग बेदाग़ सफ़ेद कपड़े और चोग़े पहने थे। अगर रात होती तो हम उन्हें भूत समझ बैठे होते, और कम से कम हमारे 'चचेरे भाई' तो डर के मारे नदी में कूद पड़े होते। लेकिन ईश्वर की कृपा से उस समय दिन था, और अफ़सोस कि हम वह मज़ा न देख सके! हम 'किलीफ़' में उतर पड़े। यहाँ इन मुल्लाओं के साथ हम ने खाना खाया, पर मेज़-बान हमीं थे। मुल्लाओं ने हम पर शक किया; पर उस समय हम इसे न जान पाए।

दोपहर के वक्त हम 'किलीफ़' से किरकी की ओर रवाना हुए। बहुत ज़्यादा हड़प कर जाने के कारण कुछ लोगों को नाचने गाने की सूझी। इस आनन्द-विनोद से एक मल्लाह को यह धारणा हो गई कि हम सब उस समय धन के द्वीप (Treasure Island) की सैर कर रहे थे। अब तक तो ख़ैरियत रही। परन्तु अब हम ख़तरे के घेरे में जा पहुँचे। सूरज डूबते समय हम ने कुछ काली-काली सूरतें दूर पर देखीं। ये लम्बी, बाल की टोपियां लगाए और पाजामे पहने किनारों पर खड़े थे और कुछ चिल्ला रहे थे, जो सुनाई नहीं पड़ता था। हमारे तुर्की मित्र ने कहा कि ये लोग तुर्कमान थे। यह हमें किनारे पर इस लिए बुला रहे थे कि आगे ख़तरा था।

तुर्कमानों की क़ैद

तुर्क और हमारे 'उज़बक' मल्लाह सभी पीले पड़ गए। हम ने ठीक ठीक समझ न पाया कि तुर्कमान हमें पुकार कर ख़तरे से आगाह क्यों कर रहे थे? हमारे मल्लाह डर गये। हमारे रोकने पर भी वे हमें तुर्कमानों के सामने की ओर खे ले गए। इस वक्त रात हो चुकी थी। तिरछी आँखों वाले तुर्कमान हमारी नावों में घुस पड़े। उन्हों ने हम से अगणित सवाल पूछे। इन्हें सुन सुन कर हमें क्रोध आने लगा। हम उन की भाषा न जानते थे। तुर्क ने हमें उल्था कर के उन की बातें समझाईं। उन की छेड़ छाड़ से कुछ लोगों ने अनुमान किया कि अब हम लोग क़ैद कर लिए गए। लेकिन हमारे चचेरे भाई क्योंकर विश्वास करते? उन में से कुछ लोगों ने हमारे प्रति विश्वासघात करने वाली, इस प्रकार बातें करनी शुरू कीं, "अब हम अपने मुसल्मान भाइयों के पास हैं। उन के लिए हम बोल्शेविकों के साथी जदीदियों से युद्ध करेंगे। परन्तु हमारी राय इस प्रकार की न थी। जिन लोगों ने हमारे साथ

इतनी अच्छी तरह—भाइयों की तरह—व्यवहार किया था और जो हमारे साथ पूरी सहानुभूति रखते थे, उन के ख़िलाफ़ लड़ने की अपेक्षा हम ने इन (तुर्कमानों) के हाथों से मर जाना अच्छा समझा। हम अपने सिद्धान्त से एक इञ्च भी न हटे। ग्यारह बज चुके थे। इस अचानक हमले के कारण हम कुछ खाना न खा पाए। हमारे सामने चारों ओर अँधेरा छाया था। अपने हाथों पर सर रखे हम इस हमले के विषय में सोच रहे थे। लेकिन हमारे भाई लोग बहुत .खुश थे। वे उन तुर्कमानों से घुल-घुल कर बातें कर रहे थे, जो फ़ारसी जानते थे।

हमारी ज़िन्दगी में यह सब से बड़ी रात थी। हम ने इसे बड़ी तकलीफ़ के साथ बिताया। इस के साथ मुक़ाबिला करने पर गंजू और हिन्दूकुश वाली रातें निरी साधारण मालूम पड़ती थीं। हमारे तुर्क दुभाषिए ने अब बताया कि यह क़ैद मौत की पहली सीढ़ी थी। हम ने अपनी क़िस्मत पर सब छोड़ दिया। लेकिन हमारे धर्मान्ध लोग अब भी तुर्कमानों से बिरादराना बर्ताव की आशा लगाए थे। बड़ी परेशानी के साथ मौत की राह देखते हुए हम ने वह रात बिताई।

जानवरों की तरह हांके जाना

आज से बढ़ कर उदास, सुस्त, और मनहूस सबेरा दूसरा कोई नहीं हुआ। झुण्ड के झुण्ड जवान, बूढ़े, और लड़के गधों और ख़च्चरों पर चढ़े आए। ये बन्दूक़ें, पुराने बेकार हथियार और कोड़े लिए हुए थे। ये लोग ऐसे मालूम होते थे, मानों भूखे भेड़िये कमज़ोर भेड़ों पर टूट पड़ने के लिए दौड़े आ रहे हों। कुछ लोग बिल्कुल नए ढङ्ग की बन्दूकें लिए और नीले और ख़ाकी वर्दियाँ पहने थे। यह आगे बढ़े और हम से बोले

कि नावें छोड़ दो और किनारे पर एक क़तार में खड़े हो जाओ। हम ने ऐसा ही किया। उन में से हरेक ने हमें गिना। यह गिनती हिन्दुस्थानी जेलों की आधी रात के वक्त होने वाली गिनती से कहीं सख़्त थी। इस के बाद हमारी अच्छी तरह तलाशी ली गई। जब हमारे पास या अस्बाब के अन्दर उन्हें कुछ न मिला तो वे लगे हमें बन्दूक के कुन्दों और कोड़ों से मारने। कोई भी पिटने से न बचा, यहाँ तक कि हमारे चचेरे भाई भी .खूब पिटे, जिन्हें इन लोगों के प्रति इतना आदर था। बेतों की मार बहुत कड़ी थी। हमें अपने स्कूल के दिनों की भी सुध भूल गई। उस समय भी कभी इतने नहीं पिटे थे। इस मार के सामने तो हम ख़राब से ख़राब मकतब के मौलवी की याद भूल गए। इस के बाद उन्हों ने चिल्लाना शुरू किया, "हीदा", "हीको" (आगे बढ़ो, दौड़ चलो) वे तो सवारियों पर चढ़े थे और हम थे पैदल। ज़रा हमारी हालत का अनुमान तो कीजिए! स्वभावतया हम उन के साथ दौड़ न सकते थे। जिस का नतीजा था कुन्दों और बेतों की मार। कोई चार आदमी रास्ते में ही बेहोश हो गए, लेकिन दया का नाम न था! हम प्यासे, बे-हद प्यासे थे, लेकिन एक घूँट भी पानी पीने का हुक्म न हुआ! 'हीदा' और 'हीको' के अलावा और कुछ न सुन पड़ता था। किसी ने हमारी रक्षा न की। ईश्वर ने ही हम को बचाया। बेहोश साथी हमारे लिए बोझ हो रहे थे। हम चलते न थे, किन्तु दौड़ रहे थे। पाठक समझ सकते हैं कि ऐसी हालत में अपने कन्धों पर यह बोझ उठाना कैसा कठिन था। हम ने एक बेहोश के सोने के बटन एक सिपाही को देने को कहा और उस से प्रार्थना की कि हमारे साथी को अपने पीछे बैठा ले। इस पर बटन तो ज़बरदस्ती छीन लिए गए और बदले में हम पर बेतों की वर्षा हुई। हम अपने बेहोश

साथियों को कैसे छोड़ सकते थे ? हम ने एक उपाय किया; दो आदमियों ने हाथ मिलाए और उन पर एक बेहोश आदमी को बैठाया और एक तीसरे आदमी ने उस की पीठ को सहारा दिया। इस तरह हम लोग रवाना हुए। हमारे रास्ते में इन के सिवा और भी कठिनाइयाँ थीं। घोड़ों की सरपट से धूल उड़ती थी, इस वजह से हमें रास्ता दिखाई न पड़ता था। हम लोग धूल से ढक गये थे। हमारे सरों पर धूल का पर्दा पड़ गया था। सामने सिवा धूल के बादलों के और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि यदि कोई हमें उस समय देखता तो चेहरे से पहचान न पाता। हम सिर्फ़ आवाज़ से पहचाने जा सकते थे; और वह भी मारे प्यास के बहुत धीमी पड़ गई थी।

जानवरों के बाड़े में जेल

सवेरे से ले कर पाँच बजे शाम तक हम बिना कुछ खाए पिए २५ मील दौड़े। अत्यन्त दुःखदायिनी यात्रा थी! वे लोग हमें एक कारवा-सराय ले गए। वहाँ पर मुँह धोने और पीने के लिए आधा पिंट (लगभग एक पाव) पानी दिया गया। और रोटी तो दी ही नहीं गई। हमें एक अस्तबल में बंद कर दिया गया। वहां पर लीद और पेशाब ख़ूब पड़ा था। हम जंज़ीर से बाँध दिए गए और हमारे पैरों पर ऐसी बेड़ियाँ डाल दी गईं जैसी कि हम लोग राजपूताना में ऊँटों को पहना दिया करते हैं। हम ने दया की भीख माँगी, उत्तर में उन्हों ने घूँसे दान किये।

उफ़! अब तो हमारे चचेरे भाई बारम्बार क़िस्मत को कोसने लगे! उन की आँखों से मोती टपकने लगे। लेकिन हम तो इस व्यवहार से सन्तुष्ट थे, क्योंकि अपने मित्र जदीदियों

के दुश्मनों से, हम और किस बात की आशा कर सकते थे? हमारे पास खेलेब (रूस की भूरी रोटी) थीं। इन्हें देखते ही तुर्कमानों को इस बात का काफ़ी सुबूत मिला कि हम लोग अदीदी और फलतः काफ़िर थे। वह रात भी परेशानी में बीती। हमें नींद न आई। भला मिट्टी में कोई क्या सो सकता है? सबेरे पहर ज़रा झपकी आ गई, लेकिन शीघ्र ही बदमाश लड़कों ने दीवाल पर पत्थरों के ख़ाली निशाने मार मार कर हमें जगा दिया। यह छोकरे शैतान के बच्चे मालूम होते थे और हमारी जगह मानों नरक थी। देवताओं ने मानो इन शरारतियों के झुण्ड छोड़ कर हम से बदला लिया था।

एक के बाद दूसरा 'कलन्तर' (अधिक आयु वाला-वयस्क) आया और हरेक ने हमें गिना। क़सम ख़ुदा की! कोई कंजूस मारवाड़ी भी अपने रुपए इतनी मर्तबे नहीं गिनता, जितनी बार इन लोगों ने हम ज़िन्दा लोगों को गिना। और शाम के पहले हमें इन की अप्रिय और दुःखदायिनी मौजूदगी से छुटकारा न मिला। हमें खाने के लिए तो कुछ न दिया गया, लेकिन मेहरबानी कर के यह कहा गया कि अगर हमें खाने की चीजें ख़रीदनी हैं, तो हम अपने कपड़े बेच डालें। अकाल में भोजन के लिए आदमी सब से प्यारी चीज़ भी बेच डाला करता है। हम ने भी ऐसा ही किया। लेकिन इन कपड़ों से भला कै दिन काम चल सकता था? तीसरे दिन हमें बाहर चलने के लिये तैयार हो जाने का हुक्म मिला। हमारे तुर्क दोस्त ने सराय की चाय की दूकान में कुछ बातचीत छिपे-छिपे सुनी थी। वह बहुत उदास दिखाई पड़ता था। उस ने इस का ज़िक्र तुर्कमानों के डर के कारण बहुत देर तक न किया! वयस्क लोगों की समिति ने हमें मार डालने का

निश्चय किया था। इसी विषय पर वह बातचीत हुई थी। इस कष्ट से छुटकारा पाने के लिए हम मौत के लिए उतावले हो रहे थे। उस सभा में मारने के कई तरीके सुझाए गए। उनमें से एक प्रस्ताव यह था कि हमें नावों पर फिर से ले चला जाय। हर एक की कमर में एक वज़नी बोझ बांध दिया जाय और तब नदी में फेंक दिया जाय। दूसरा तरीका यह था कि हम सब को नाव में चढ़ा कर उसे उलट दिया जाय। तीसरा और जिस पर सब लोग राज़ी हो गए थे, वह यह था, कि हमें क़त्ल-गाह में ले जाया जाय और वहां बन्दूकों के निशाने बनाया जाय।

मौत का फन्दा

यह फैसला तो हो चुका था, लेकिन तुर्कमानों के कलन्तरों की केन्द्रीय संस्था की मंज़ूरी की प्रतीक्षा की जा रही थी। स्थानीय अमला लोग हमारे ख़ून के बहुत प्यासे हो रहे थे। इसी से उन्हों ने हमें उसी दिन चल देने का हुक्म दिया। वे हमें बाहर निकालने ही को थे कि इसी बीच एक कलन्तर गधे पर चढ़ा हुआ आ पहुँचा। उस के सर और दाढ़ी के बाल सफेद हो गए थे और उस की नाक टेढ़ी थी। आते ही आते उसने हमारे हत्यारों को बेंत से पीटना शुरू कर दिया। इस से हमें थोड़ी सी शान्ति मिली। जब हमें हुक्म हुआ कि जब तक मंज़ूरी न आ जाय हम वहीं रहें। हमें फिर से ज़ंजीर से बाँधा गया और बेड़ियाँ पहनाई गईं। इस प्रकार हम एक हफ़्ते और रहे। एक दिन सब की अच्छी तरह तलाशी ली जाने का हुक्म आया। आश्चर्य तो इस बात पर हुआ कि तलाशी लेने वाले हमारे कुरानों को बोल्शेविक-साहित्य समझ बैठे! हम सब ने इस का विरोध किया, और कहा कि नहीं ये तो कुरान शरीफ हैं। लेकिन उन की समझ के मुताबिक तो हरेक छपी

हुई चीज़ प्रचार के लिए इश्तिहारों के अलावा और कुछ हो ही नहीं सकती थी! हमारी सभी धार्मिक पुस्तकें छीन ली गईं। इस के बाद एक तरफ़ से सब पर बेंत चलने शुरू हुए। हमारे सौतेले भाई बड़े ज़ोर ज़ोर से कहते थे कि हम मुसलमान हैं, लेकिन वे लोग इस के बदले उन से भी ज्यादा ज़ोर के साथ कहते थे कि तुम जदीदी क़ाफिर हो। इस के बाद हमें हुक्म हुआ कि चलने की तैयारी करो। दो बजे हम ने कारवाँ--सराय छोड़ी। हमें इस बात की प्रसन्नता तो अवश्य हुई कि जेल की चहार दीवारी से छुटकारा मिला। लेकिन इस से भी बुरी क़िस्मत हमारी राह देख रही थी, इस का हमें पता न था। हमें एक रेगिस्तान से गुज़रना पड़ा। सारे रास्ते पहले दिन का सा ही व्यवहार हमारे साथ किया गया। हमें दस मील तक घसीटने के बाद हमारे कैद करने वालों को कुछ अपने घुड़सवार मिले। उन में क्या बातें हुईं यह तो हमें मालूम न हुआ, लेकिन उस बातचीत के बाद वे लोग हमें सीधी राह से दूर एक नज़दीक के चुङ्गी घर को ले गए। हमें एक छोटे से गन्दे कमरे में बन्द कर दिया गया। यह मौत के पास जाने की तैयारी थी। उस कोठरी में एक भी छेद न था। हम सब का दम घुटने लगा और हम हांफने लगे। कुछ लोग तो बेहोश भी होने लगे। सभी पसीने से तर हो गए। पर इस विपत्ति से बचने की कोई तरकीब न थी। हम लोग धर्मान्धों को कोस रहे थे, क्यों कि वही लोग हमारी वर्तमान दशा के अधिकतर ज़िम्मेवार थे। बदले में वे सभी मज़हबी विश्वाओं को कोसते थे, और ईश्वर से प्रार्थना कर रहे थे कि काश वे फिर एक बार बोल्शेविकों के हाथ में पड़ जाँय तो कभी उन की सलाह के ख़िलाफ़ न चलेंगे। लेकिन इस वक्त इन प्रार्थनाओं से क्या लाभ था! ईश्वर ने बीच में पड़ने से इन्कार कर दिया।

वध-स्थान

चार बजे हम फिर से बाहर निकाले गए। सब लोग निरे पीले पड़ गए थे। ऐसा मालूम होता था कि हम लोग निर्जीव हो गये। हम लड़खड़ाते थे, लेकिन डंडों ने हमें तेज़ी से चलने को मजबूर किया। इस तरह पाँच मील चल कर हम मौत की जगह के पास पहुँचे। यह जगह कटोरे के आकार की थी। यहाँ पर तुर्कमान लोग फ़ारस या दूसरे लोगों के कारवाँ को जो उन के चंगुल में फँस जाते थे, क़त्ल किया करते थे। हम एक गोल घेरे में खड़े किए गए। उस समय हम अपने सर नीचे किए हुए बैठे थे। मानों नमाज़ पढ़ रहे हों। हमारे हत्यारे हमें घेरे खड़े थे। हमारे पीछे उन्हों ने दो क़तारें बना रखी थीं। हमें हुक्म मिला कि न तो बातचीत करो और न ऊपर की ओर सर उठाओ। कोई यह न देख सकता था कि उस की पीठ पीछे क्या हो रहा था, लेकिन यह आसानी से किन्तु चुपके से देखा जा सकता था कि सामने वालों के पीछे क्या हो रहा था। हरेक के सर के ऊपर एक आदमी बन्दूक और दूसरा एक कोई विचित्र हथियार लिए खड़ा नज़र आता था। चन्द क़दमों की दूरी पर कलन्तरों (वयस्क पुरुषों) की मीटिंग में हमारे भाग्यों का निपटारा हो रहा था। एक आदमी यह ख़बर लाया कि कौन्सिल ने इन अपराधियों को मौत का दण्ड दिया जाना मंज़ूर कर लिया है। इस फ़ैसले के पक्ष में ६० और इस के ख़िलाफ़ ४० आदमी थे। पर हुक्म देने में अब भी देर थी। जल्लादों के कमाण्डर (नायक) ने फ़ारसी में हम से कहा कि मार देने के लिए पहला हुक्म तो आ गया है, लेकिन अभी दो की और देर है। लेकिन अगर तुम लोग उठ कर भागने की कोशिश करोगे तो हम दूसरे हुक्मों की राह न देखेंगे और तुम्हें ज़िन्दगी से छुटकारा दे देंगे।"

यह सुनते ही वहाँ पूरी तरह से शांति छा गई। न तो कोई हिला डुला और न किसी ने अपना सर ऊपर उठाया। हमें चारों ओर मौत ही मौत नज़र आई। बन्दूकें हमारे सरों के ऊपर तान ली गईं। दूसरा हुक्म आया। उस ने पहले हुक्म का समर्थन किया। कमाण्डर ने पहली जैसी सूचना फिर दी। इस बार बन्दूकें भर ली गईं। अब तो हम समझ गए कि अब कदापि न बचेंगे। दया प्रार्थना फ़िज़ूल थी। भाग सकना असम्भव था। हमारी आँखों के सामने मौत नाचने लगी। आंखों में अंधेरा छा गया। असहनीय कष्ट था! मौत, नंगी मौत, के अलावा और कुछ दिखाई न पड़ता था। मौत के दो हुक्मनामे तो आचुके थे, तीसरे की राह देखी जा रही थी। केवल थोड़े से मिनटों की देर थी। लेकिन मालूम हुआ कि अब कलन्तरों की रायों में फ़र्क आ गया। वे इस बात पर दो दलों में बँट गए कि हमें एक एक कर के मारा जाय अथवा सब को एक साथ ख़त्म कर दिया जाय। आख़िरकार यह तय हुआ कि हमें एक साथ मारा जाय।

अपने घुटने पर सर झुकाए हुए हम अपनी बीती हुई बातों को याद कर रहे थे। चन्द घड़ियों में, हम घर से काबुल पहुँच गए, वहाँ से तरमीज़ और तरमीज़ से क़त्ल के घाट आ पहुँचे। मौत! मौत !! सभी ओर मौत थी !!! चारों ओर मौत थी !!!! निकल भागने की कोई राह न थी। आखिरी हुक्म के इन्तज़ार में हमें कितनी परेशानी, निराशा और बेचैनी थी, इसे पाठक महसूस कर सकते हैं। हमारे ऊपर निराशा का अधिकार हो गया। हमने सब कुछ भाग्य पर छोड़ दिया। इस ख़्याल से हमें संतोष हुआ कि हम लोग पवित्र सिद्धान्तों के लिए मर रहे हैं। अपने पिछले जीवन को स्मरण किया और हमें यह प्रसन्नता हुई कि हम अपनी मुनासिब जगहों पर ही मर रहे हैं। उससे विचलित न हुए थे। हम भारत से चले

थे और भारत के लिए ही मर रहे थे। हमारी आंखों से एक भी आंसू न निकला। दूसरी ओर हमारे सौतेले भाई सिसकते और बड़े ज़ोर से रो रहे थे। पर यह सब व्यर्थ था।

एक आश्चर्यजनक करामात

आख़िरी हुक्म लेकर पहुँचने के पहले ही एक कौतुक हुआ। इसने रंग में भंग कर दिया। मौत के स्थान पर गुलामी कर दी गई। हम से एक फ़र्लाङ्ग दूरी पर एक बम का गोला आकर फटा। इसे किसने फेंका? यह कहाँ से आया? इसका अभिप्राय क्या था। ऐसे ही बहुत से सवाल हमारे मन में पैदा हुए। हमारे सामने ज़िन्दगी के लिए छोटी सी आशा की धुँधली झलक फिर गई। * क्या इन्हें बोल्शेविकों ने तो नहीं फेंका? क्या वे हमें बचाना चाहते थे? और देखो, एक दूसरा गोला और भी नज़दीक फटा। मौत की ख़बर लाने वाला आदमी रास्ते में था। इन बम के गोलों ने कलन्तरों और हत्यारों—दोनों को भयभीत कर दिया। ख़बर लाने वाले को बीच ही में एक तीसरा गोला मिला। साथ ही मौत का फैसला भी बदल दिया गया।

गुलाम का तोक

६० आदमियों ने पक्ष में और ४० ने विपक्ष में राय देकर हमें गुलाम बनाने का प्रस्ताव स्वीकार किया। इस समय बम के गोलों का रहस्य प्रकट न हुआ। आगे चल कर हम इसे स्पष्ट करेंगे। जिस तरह डाकू लोग लूट का माल आपस में बाँट लेते हैं, उसी तरह हम लोगों को कलन्तरों ने बाँट लिया। अब तक हम सब एक साथ रहे थे। गोकि जंजीरों से कसे थे और

* कुछ समय बाद यह पता चला कि एक 'सोवियट' (रूसी) स्टीमर पास से जा रहा था, दुश्मन तुर्कमानों को तितर बितर करने के लिए उसी में से वे बम फेंके गए थे। स्टीमर पर के बोल्शेविकों को यहां की असली स्थिति और हमारी हालत कुछ भी मालूम न थी।

बेड़ियाँ जकड़ी हुई थीं। लेकिन अब तो वह आशा भी (एक साथ रहने की) जाती रही। अब हम सिर्फ़ क़ैदी ही न रहे बल्कि ग़ुलाम भी हो गए। अपने अपने भाग्यों के अनुसार हम लोग किसी उदार या कठोर तुर्कमान के हिस्से में पड़े। मैं (लेखक) और एक अमृतसरी पंजाबी जवान (जो आज कल रोम में है) एक मुल्ला के हिस्से में पड़े। वह फ़ारसी जानता था। उस ने हमारे साथ कुछ भलमन्साहत का व्यवहार किया। लेकिन हथकड़ी और बेड़ी चौबीसों घण्टे पड़ी रहती थीं। हम मकान की चहारदीवारी के बाहर न जाने पाते थे। रात में हम में से एक की बेड़ियाँ निकाल दी जाया करतीं और दूसरी बेड़ी दोनों के एक एक पैर में इस ढङ्ग से पहना दी जाती कि उस से घण्टीदार ज़ंजीर का काम निकलता था। ऐसा करने का उद्देश्य यह था कि हम अपनी जगहों से ज़रा भी हिले कि आवाज़ पैदा हो गई। तुर्कमान लोग हमें वही खाना दिया करते थे जो खुद खाते थे। कारवाँ-सराय में हम सब एक साथ थे, लेकिन यहाँ एकान्त में रहना पड़ा। इस से यहाँ का जीवन वहाँ से भी भारी मालूम पड़ने लगा। एक रात हमने बम फटने की आवाज़े सुनीं। 'सर्च-लाइट' की बत्तियों से आस्मान प्रकाशित हो उठा। ऐसा मालूम होता था मानों सब का उद्धार किया जा रहा है। उस नौजवान को (जो मेरे साथ था) बहुत जोश आया। मैं—लेखक—बड़ी मुश्किल से उसे अपने ख़्यालात प्रकट करने से रोक सका। ऐसा कर के नई तकलीफ़ों को बुलाना था। दूसरे दिन हमारे स्वामी लोग बहुत परेशान और घबड़ाए से देख पड़े। उन की बातें हम न समझ सके, लेकिन उन की चेष्टाओं से यह छिप न सका कि कोई भयङ्कर बला उन्हें सता रही थी।

दो दिन तक और सर्च-लाइटें दिखाई पड़ती रहीं, बम के गोले सुन पड़ते रहे और मशीनगनें भी शोर करती रहीं। हमारे मालिक गाँव छोड़ कर कहीं भाग गए। हम लोग अपने भाग्य के भरोसे पर छोड़ दिए गए। हमारी बेड़ियां काटी गईं, हथकड़ियां खोल दी गईं। आह! आज़ादी, तुझ में कितना आनन्द है! तुझ में कैसी विचित्र शक्ति है! जब कोई तेरी ऋषियों की सी सूरत देख लेता है, तो, वह अपनी सारी बीती हुई तक़लीफ़ें भूल जाया करता है। कुछ दिनों पहले जिन रेगिस्तानों पर हम गुलाम और बन्दूक़ की ख़ूपक की तरह घसीटे गए थे। आज उन्हीं मरूस्थलों पर हम आज़ाद की तरह चल रहे थे। पहले तो वहाँ पर सिर्फ हमीं दो थे, लेकिन थोड़ी देर के अन्दर रस्सी के और तार भी आ मिले। सूरज डूबने के पहले हम १६ हुए, और रात तक हमारी संख्या ५७ तक पहुँच गई।



साहसी जीवन में इस तरह के उलट-फेर, उन्नति और पतन हुआ करते हैं। एक समय था जब हम क़ैद किए गए थे। दूसरा समय आया जब हम क़त्ल कर दिए जाने वाले थे। फिर ग़ुलाम बना डाले गए। और अब आज़ाद हो गए। भाग्य कितनी तेज़ी से बदला करता है! कहीं तीसरा हुक्म आ गया होता तो हमारी ज़िन्दगी और उमंगें ख़त्म हो गई होतीं। हमारे दर्मियान कुछ ऐसे लोग भी थे, जिन्हों ने स्वदेश इसलिये छोड़ा था कि किसी अज्ञात देश में फ़ौज के जनरल या कर्नल बनेंगे, कुछ ऐसे थे जिन के मंसूबे थे कि हम बड़े भारी राजनीतिज्ञ बनेंगे। कुछ लोगों ने स्वदेश छोड़ते समय अपने दोस्तों से कहा था, "हिन्दुस्थान तो अपने को आज़ाद नहीं करता, मैं

ही अपने को क्यों न आज़ाद कर डालूँ ?" कुछ ने यह कहा था, "मेरे दिल में अनवर और नैपोलियन का सा जोश है और तलवार बग़ल में। दुनिया में अपना रास्ता मैं स्वयं ही निकाल लूँगा।"

अगर ऊपर कही हुई बातों को ऊपरी तौर से ही देखा जाता तो अनवर और नैपोलियन इन के साम ने मुँह की खा जाते। लेकिन इन का जन्म तो बड़ा बन ने की कोरी उमंग के कारण हुआ था। बात और काम में ज़मीन आस्मान का अन्तर हुआ करता है। अस्तु। हम सत्तावनों ने अपनी "आज़ाद" रात एक ऐसी हवेली में काटी जो गुम्बद की सी देख पड़ती थी। सारी रात हम सो न सके। क्यों कि एक तो आज़ादी की बेहद ख़ुशी थी और दूसरे हमारे चारों ओर गोलियाँ बराबर चलती रहीं।

किरकी पहुंचे

आख़िरकार हमारी आशाओं का सुहावना सवेरा हुआ।' हम यह जानते थे कि 'किलीफ़' के आगे ही 'किरकी' थी। लेकिन वह किस दिशा में है यह जानना एक भारी समस्या थी। न तो हमारे पास नक्शा था और न हमारा अन्दाज़ा ही काम करता था। बड़ी कठिनाई के बाद हम ने पश्चिम की ओर चलना शुरू किया। एक लम्बे बाँस में सफ़ेद साफ़ा टाँग दिया गया। गोया यह शान्ति और क्षणिक सन्धि का चिन्ह था। हम कोई आठ मील रेगिस्तान पर चले। तब आक्सस के किनारे किरकी का क़िला दिखाई पड़ा। ज्यों ज्यों हम आगे बढ़ते जाते थे हमें क़िले पर का लाल झण्डा और उस पर रखी हुई लम्बी-चौड़ी तोपें साफ़ नज़र आती जाती थीं। हमें निकट देखते ही कुछ सैनिक नीचे लोहे के घेरे के पास उतर आए

उन्हों ने हम से पूछा कि हमारे क्या इरादे थे? हम किस देश के रहने वाले थे? हम रूसी भाषा न जानते थे। हमारे तुर्की मित्र ने उन से अफ़ग़ानिस्तान से तरमीज़ आने, वहाँ से चल कर तुर्कमानों की क़ैद में पड़ने और उस से कौतुकपूर्ण छुटकारा पाने का सारा क़िस्सा कह सुनाया। इस से बढ़ कर सनद और क्या हो सकती थी? उन्हों ने हमें अन्दर बुला लिया। रहने के लिए हमें दो लम्बी बारीकें दी गईं। खाने के लिए वही चीजें दी गईं जो हमें तरमीज़ में मिलती थीं। हमें इस तुर्कमानों वाली घटना में जो प्रसन्नता और आराम मिला—उसे विरले ही अनुमान कर सकेंगे। कहाँ तो हमें मार डाले जाने का हुक्म हुआ था, और फिर गुलामी का पट्टा पहनाया गया था, और फिर थोड़ी देर में ही आज़ाद हो गए! कैसी विचित्रता थी? यहाँ पर (किरकी में) हमें रूसी नागरिकों के अधिकार हासिल हुए। गुलाम होने के बजाय हम लोग फिर दुबारा उस बड़े प्रजातन्त्र के मेहमान हुए जो शांत महासागर से बाल्टिक तक और आर्चेंजिल से अफ़ग़ानिस्तान और फ़ारस की हदों तक फैला हुआ है।

एक समय था जब हम मारे भूख के मर रहे थे। अब फिर हमें खेलेव और लपुश्क ख़ूब खाने को मिला। चारों ओर आनन्द ही आनन्द था। यहां पर सोवियट कमीशर और प्रेसिडेंट अक्सर हमारे पास आया करते। 'मार्च' और 'अक्टूबर' की क्रांतियों के अपने तजुर्बों पर वे लोग खूब बातें किया करते। हम उनके साथ हिल मिल गए। एक तो हमारे पास बहुत से मिलने वाले आते थे और दूसरे हम थके भी बहुत थे। इन्हीं कारणों से एक हफ्ते तो हम लोग घर के बाहर न निकले। लेकिन जब ज़रा तबियत ठीक हुई तो हमने शहर आना जाना शुरू किया। किरकी तरमीज़ से बड़ा शहर है। इसकी बनावट बहुत अच्छी है। यहाँ बिजली

की रोशनी का अच्छा प्रबंध है। यहाँ के सैनिकों और अफ़सरों की वर्दियाँ तरमीज़ वालों से बढ़िया थीं। ज्यादातर यहूदी और बुखारी लोग यहाँ रहते थे। रूसी लोगों की तादाद बहुत कम थी। दफ्तर और सोवियट के घर ज्यादा साफ़ सुथरे और सजे थे। यहाँ के लोग सोवियट तरीक़ों से संतुष्ट थे। कुछ लोग तो इस सरकार के प्रति बहुत ही अधिक जोश दिखाते थे। आज कल के नये ढंग के प्रायः हर शहर में मोटरें हुआ करती हैं परन्तु वे यहाँ न थीं। हाँ, ड्रेस्कें (Dresskkas, बग्गियां) बहुत सी थीं।

सोवियट

हमें यहीं पर पहले-पहल मालूम हुआ कि 'सोवियट' के माने पंचायत होते हैं। एक बुख़ारी ने हमें समझाया कि 'सोवियट' जनता की मिली हुई आवाज़ है। यह एक ऐसे बड़े परिवार के सदृश है जिसमें सबसे छोटे को भी अपनी छिपी हुई शक्तियों का ज्ञान हो गया हो। सोवियट के अन्तर्गत मज़दूर तक इस बात का ख्याल करके खुश होते हैं कि अपने भाग्य का फैसला करने वाले खुद वही हैं। इस प्रथा में अठ्ठारह वर्ष से अधिक उम्र के हरेक व्यक्ति को वोट (मत) देने का अधिकार है। स्त्री-पुरुष किसी को रुकावट नहीं है। हमें बाद में मालूम हुआ कि सोवियट अपने ढंग की अनोखी हुकूमत है। इसमें किसान और मज़दूर, दिमाग़ी काम करने वाले और शारीरिक काम करने वाले सभी मिल कर हुकूमत करते हैं। आपसी-लड़ाइयों और रद्दो बदल के जारी रहने पर भी उस समय यहां सब काम अच्छी तरह हो रहे थे। किरकी में एक सप्ताह रहने के बाद हमारे बचे हुए साथी भी आ पहुँचे। अब तक हम लोग ५७ थे, अब १९ और आ गए। अभी भी ४ आदमियों का पता न था। कुछ समय बाद यह ख़बर मिली कि उन में से दो को हुक्म न

मानने और उतावलेपन के कारण तुर्कमानों ने मार डाला था और बाक़ी दो अफ़ग़ानिस्तान लौट गये थे।

फ़िर से फूट

फ़ाफ़ी अर्से तक हम यह समझते रहे कि तुर्कमानों की दी हुई तकलीफ़ों के बाद से हमारे चचेरे-भाई हमारे इरादों में शामिल हों गये थे। लेकिन यह हमारी भूल थी। वे अब भी नहीं बदले थे। कुछ दिनों बाद मालूम हो गया कि यह क्षणिक मेल क्यों था। इसकी वजह दिलों की सफ़ाई न थी, किन्तु वह तुर्कमान के हमले की आशंका। कभी कभी हम क्या देखते थे कि वे लोग छज्जों पर या कोनों में खड़े हुए काना-फूसी कर रहे हैं। वे लोग इस बात की खूब फ़िक्र रखते थे कि कहीं भेद न खुल जाये। अगर कभी धोखे से हमारे दल का कोई आदमी उनके झुन्ड में पहुँच जाता तो उसे बड़ी रुखाई से हुक्म मिलता कि बाहर हट जाओ।

अब तक किरकी के अधिकारी लोग हमारे साथ बहुत ही इज़्ज़त से पेश आया करते थे। लेकिन हमारे 'सौतेले-भाइयों' ने फिर अपनी गंदी हरकतें करनी शुरू कीं। वे लोग प्रेसिडेण्ट के पास पहुँचे। उससे कहा कि उनके लिए टर्की जाने का बन्दोबस्त कर दिया जाय। क्योंकि उनका उद्देश्य टर्की जाने का था, रूस को नहीं। यह सुनकर प्रेसिडेण्ट को बहुत आश्चर्य हुआ। हमें अपने मित्रों की इन हरकतों का कुछ भी पता न था। एक अफ़ग़ान, सोवियट-सेना का सिपाही था। वह हमारे पास अक्सर आया जाया करता था। उसी ने हमें इन बातों की ख़बर दी। उसने साफ़-साफ़ कह दिया कि अब तक तो सभी कमीशर (कमिश्नर) और सैनिक हमारा आदर करते थे, क्योंकि वे हमें हिन्दुस्थान के उद्देश्यों के प्रतिनिधि समझते थे। लेकिन इन

लोगों की ऐसी करतूतों ने उनके दिलों पर दूसरे ही भाव पैदा कर दिए हैं। इनसे हिन्दुस्थान की अच्छी कीर्ति पर धब्बा लग गया है। यह सुनकर हमें ज़रा भी आश्चर्य न हुआ। हम अपने मित्रों के दिलों के हाल अच्छी तरह जानते थे। हमें एक बात का दुःख जरूर हुआ। उन्हें चाहिये था कि कम से कम हमसे सलाह तो ले लेते और वे उस प्रतिज्ञा पर डटे रहते जो तुर्कमानों के क़ैदख़ाने में की थी। एक दिन हमने सभी निर्वासितों की सभा बुलाई। सिर्फ़ ३६ आदमी उसमें आए। हमारे वे दोस्त लोग जान बूझ कर न आए। हमने उन्हें बुलाने के लिए आदमी भेजे, फिर वे आए; लेकिन हमारी सभा में शामिल होने नहीं, वरन हमें डरवाने। उन्होंने चारों ओर से हमें घेर लिया और बड़े ज़ोर से चिल्लाना आरम्भ किया। एक लाहौरी मुल्ला ने कहा कि हम लोग काफ़िर (विधर्मी) थे और दूसरों ने उसकी हां में हां मिलाया। ये धमकियां अब हम अधिक न सह सके। हमने उन्हें ललकारा कि बाहर निकल कर मर्दों की तरह हमसे लड़ लो। वे घूसों की लड़ाई पसन्द न करते थे। उन्हें तो ज़बानी तू-तू मैं मैं पसन्द थी। उन्होंने मुजाहिदों की तरह लड़ना शुरू किया। आख़िरकार यह गाली-गलौज बन्द हुई और हमारे सौतेले भाई पीछे खिसक गए। दूसरे दिन प्रेसिडेण्ट ने हमें बुलवा भेजा। कुछ लोग गए। उनसे उन्होंने दूसरे दल वालों की मांग की बाबत पूछताछ की। हमने उन्हें समझाया कि वे लोग टर्की जाना चाहते थे। उन्होंने कहा कि आप लोग अपने दोस्तों से कह दें कि टर्की जाने का इजाज़त देना मेरे अधिकार के बाहर है। यह इजाज़त सिर्फ़ तुर्किस्तान प्रजा तंत्र की राजधानी ताशकन्द जाकर ही हासिल की जा सकती है। अब रही ताशकन्द जाने की बात, सो उन्होंने वादा किया कि ज्योंही पहला स्टीमर मिला उस पर हमें भेज दिया जायगा।

हमने उत्तर दिया कि जहाँ तक हमारे दल का सम्बन्ध था हम लोग जब तक वे चाहें रुकने के लिए तैयार थे। क्योंकि हम यह जानते थे कि वे लोग विरोधी—क्रांति करने वालों की सेनाओं से चारों ओर से घिरे हुए थे। लेकिन दूसरा दल हमारा प्रस्ताव क्यों मानने लगा हम अपने डेरे पर लौट आए। वहाँ हम ने दोस्तों से कहा कि अगर वे लोग फिर से ज़ेल का मज़ा उठाना चाहते हों तो उन्हें नावें मिल जायँगी। वे जहाँ चाहें जायँ। कुछ दिनों बाद तुर्कमानों ने फिर से शक्ति इकट्ठी की और शहर घेर लिया। एक दिन हम ने ख़्याल किया कि हमारा अफ़ग़ान मित्र, जो दिन में कम से कम एक बार अवश्य आ जाया करता था, लगातार दो दिनों से क्यों नहीं आया? इसी समय देखा कि कुछ लोग घोड़े पर लाद कर एक लाश ले आए। उसे वे पास वाली बारिक में ले गए। इस बारिक में 'लाल सैनिक' (रूसी फौज) रहा करते थे। इस दृश्य से हमें बहुत दुःख हुआ। हम प्रेसिडेण्ट के पास गए। उस से हम ने अपने एक मित्र के मारे जाने पर सहानुभूति और अपनी चिन्ता प्रकट की दूसरे दलवाले सड़क पर टहलते रहे। वे सहानुभूति प्रकट करने भी न गए

उस समय प्रेसिडेण्ट कमीशरों के साथ कुछ सलाह कर रहे थे। तो भी उन्हों ने हमें मिलने का मौक़ा दिया। इस दुर्घटना से वे बहुत परेशान जान पड़ते थे। हम ने जरूरत पड़ने पर अपनी सेवाएँ समर्पित करने का वादा किया। प्रेसिडेण्ट ने इन का स्वागत किया और हम पर विश्वास किया। उन्हों ने हमें अपना सच्चा साथी समझ कर हम से पूरी स्थिति कह सुनाई। और यह बताया कि यह शहर फिर से तुर्कमानी फ़ौजों से घिर गया था। ५००० सिपाही क़िले की ओर घेरा डाले थे। ३००० नदी की दूसरी ओर थे। ये लोग अपनी नावें तैयार किये इस

बात की प्रतीक्षा कर रहे थे कि कब ५००० लोग उन्हें बुलाने के लिए 'सिगनल' (सूचना) दें और वे लोग दौड़ पड़ें। किरकी बड़ा शहर था। इस की आबादी २०००० थी। लेकिन लोगों का रुख उस समय ठीक ठीक जाना नहीं जा सकता था। क्योंकि विरोधियों और अमीर की ओर से मुल्ला और दलाल लोगों को खूब भड़का रहे थे।

८००० तुर्कमानों के मुकाबले में ३०० नियमित सैनिकों की क्या गिनती थी? अनियमित तुर्कमानों की कोई फ़ौज न थी, वह तो बढ़िया थी। मज़हबी जोश उन में इस क़दर था कि बहुत थोड़े समय में वे क़िला और शहर पीस डालते। लेकिन नियमित सनिकों की चतुराई और बहुत सी तोपों की वजह से ही तुर्कमान लोग ऐसा न कर सके थे। क़िले के सिपाही सामने वाले ५००० आदमियों का अच्छी तरह मुक़ाबिला कर सकते थे। लेकिन नदी की दूसरी ओर की टुकड़ी का कैसे सामना किया जाय, यह समस्या पेश थी? नदी के तट की रक्षा करना बड़ा ज़रूरी फ़ौजी मरहला था। इस में बहुत होशियारी की आवश्यकता थी। इस बात की आशङ्का थी कि घेरा डाले हुए ५००० लोगों की मदद लिए बिना ही यह (किनारा) शहर पर तबाही ला देगा। यदि इस की रक्षा में, ज़रा भी भूल हो गई तो तमाम फ़ौज और हमारी जानों पर आफ़त आ जायगी। लेकिन किया क्या जाय? हम लोग तो ३६ आदमियों की भीड़ थे। फिर हमारी लड़ने की शक्ति का भरोसा ही क्या था? हमारे सामने सिर्फ़ दो रास्ते थे; या तो लड़ते-लड़ते मर जायँ, अथवा अपनी आँखों के सामने शहर लुटता हुआ देखते देखते तुर्कमानों के हाथ पड़ें और बे-इज़्ज़ती तथा कायरों की मौत मरें। परन्तु, बुख़ारियों की ख़ातिर युद्ध करने का अर्थ क्या, पृथ्वी के सभी आज़ादी चाहने वालों के लिए लड़ना था? हम सौभाग्य से

वहाँ मौजूद थे; इसी लिए हम ने यह फैसला किया कि जो हाल बुखारी सैनिकों का होगा, वही हमारा भी होवे। हम ने एक फौजी टुकड़ी बनाई, और प्रेसीडेण्ट के पास कहला भेजा कि हम लोग आखिरी दम तक तुर्कमानों से लड़ेंगे। हमारे जोश और दिलेरी का रूसियों पर अच्छा प्रभाव पड़ा। उन्हें अनुभव हुआ कि वे अकेले न थे। हम ने इस बात की ज़िम्मेदारी ली कि हम लोग नदी के किनारे की रक्षा करेंगे। यह पाँच मील तक चला गया था। गिनती में तो हम ३६ ही थे, पर हमारी हिम्मत और जोश इतना अधिक था कि हम अजेय सेना मालूम पड़ते थे। हमारे तैयार होने पर हमें बन्दूक, पिस्तौलें आदि दे दी गईं।

बन्दूक और पिस्तौल लिए हम अपनी बारिकों को आए और वहाँ हम ने अपनी सभी चीजें इकट्ठा करना शुरू किया। हमारे सौतेले भाइयों ने हमें एक क़तार में घुसते देखा था उन्होंने ३६ आदमियों को ३००० का सामना करने के ख्याल का मज़ाक़ उड़ाना शुरू किया। हम शान्त बने रहे। उन की किसी बात पर हमें क्रोध न आया। हमारे एक साथी ने कहा कि जब लड़ने का मौक़ा आया करता है तो धर्मान्ध लोग परदे के भीतर छिप जाया करते हैं। "शिकार के वक्त कुतिया हगासी हो जाती है" उस ने उन से कहा कि हमारे साथ मुक़ाबिला करने चलो। हमारी तादाद दूनी करो, और हिन्दुस्थान की शान रखो।" उनका इस ओर ध्यान देना ही दूर रहा उल्टे उन्हों ने इन बातों की हँसी उड़ाई। अपना सामान ले कर नदी के किनारे की ओर हम अपनेनए रहने के स्थान की ओर चल दिए। वहाँ पहुँच कर हमने १८-१८ की दो टुकड़ियाँ बनाईं। एक दल तो किरकी के पुराने क़िले के ठीक नीचे डट गया और दूसरा जंगल में तैनात हुआ। योग्यता के अनुसार हरेक को काम बताए गए। दो आदमी इन टुकड़ियों के कमाण्डर (नायक) बना दिए गए। एक सब का निरीक्षण करने वाला नियत हुआ। इन

तीनों के काम औरों से मुश्किल थे। पहरे के वक्त हमें बहुत ख़बरदार और चौकन्ना रहना पड़ता था। छुट्टी पाने पर हम लोग खाना बनाया करते या अपने हथियार साफ करते। २४ घण्टों में हमें मुश्किल से ४ घण्टे सोने को मिलते। इस समय नेपोलियन ने भी हमसे ईर्षा की होती।

कभी कभी तो सारी रात गोलियाँ चलती रहतीं, वे हमारे कानों के पास से सनसनाती हुई निकल जाया करतीं। किनारे पर पहरा देते समय दो वार तो लेखक और तीन वार एक और आदमी घायल होने से बाल-बाल बचे। पहरा देना वैसा ही ज़रूरी था जैसा कि खाइयों में छिपा रहना, क्यों कि यह अन्देशा था कि विरोधी लोग आपस में लिखा-पढ़ी न कर लें। हमारा अन्देशा निराधार भी न था। हम ने भिन्न-भिन्न समयों में दो आदमी पकड़े। यह इस पार से उस पार नावें खोल कर उन पर जाने की कोशिश कर रहे थे। इसी चौकसी के कारण ही हमारी जानें बच सकी थीं। यह बात उन पत्रों से मालूम हुई जो इन आदमियों के पास पकड़े गए थे। एक दिन सवेरे पहर मैं (लेखक) पहरा दे रहा था। एक आदमी नाव के नज़दीक नहाता हुआ दिखाई पड़ा। नाव के पास वह बड़ी देर तक रुका रहा और बड़ी देर तक नाव की रस्सी खोलने के लिये ढीला करता हुआ मालूम पड़ा। इस पर मुझे (लेखक को) शक हुआ। मैं ने मदद के लिए सीटी बजाई। किसी भी सहायक के आने के पहले ही मैं बन्दूक ले कर उस की ओर बढ़ा। उसकी ओर निशाना लगाया, और उस से कहा कि वहीं ठहर जाय, जहाँ वह था। वह हटना चाहा लेकिन कुछ सोच समझ कर वहीं रुक गया।

इसी बीच एक दूसरा 'कामरेड' आ गया। मैंने उसे अपनी बन्दूक पकड़ाई। और उस आदमी की तलाशी लेने के लिये आगे बढ़ा। इस तलाशी में एक आश्चर्य-जनक वस्तु मिली। उस के

पाजामे के ऊपरी हिस्से में एक लम्बा ख़त छिपा हुआ था। यह तुर्कमानी भाषा में था। हम में से कोई इसे पढ़ न सकता था। इस पर उसे क़ैद कर के प्रेसिडेण्ट के पास भेज दिया गया। प्रेसिडेण्ट को एक बुखारी कमीशर ने उस पत्र का अनुवाद सुनाया। ज्योंही उस का मज़मून प्रेसिडेण्ट को मालूम हुआ, वह सीधे हमारे पास आए। हमें सर के ऊपर तक उठाना शुरू किया और हमारी बहुत प्रशंसा की। इस के बाद उन्हों ने कहा, 'भारतीय कामरेड बहुत दिन जिएँ,' 'आज़ाद हिन्दुस्थान युग युग जिए।' फिरको की रक्षा करने वाले चिरजीवी हों', हम भौचक्के खड़े थे। इन सब बातों से हमें आश्चर्य हो रहा था। थोड़ी देर बाद बुख़ारी कमीशर बोला कि वह ख़त एक दुश्मनों के दल ने लिखा था। उस में लिखा था कि:—

"तुम ३००० हो और यहाँ सिर्फ़ ३६ हिन्दुस्तानी हैं। बड़े शर्म की बात है कि तुम लोग डर गए हो और थोड़े से हिन्दुस्थानियों की चालाकी ने तुम्हारी बहादुरी को परास्त कर दिया। आओ हम लोग तुम्हारे साथ इन हिन्दुस्तानियों के ख़िलाफ़ तैयार बैठे हैं। तुम्हारे ७२ से ज्यादा आदमी काम न आवेंगे और शहर पर तुम्हारा अधिकार हो जायगा। इस के बाद जदीदियों को क़त्ल करने में हम तुम्हारी मदद करेंगे।

यही कारण था कि प्रेसिडेण्ट इतने प्रसन्न थे और हमें गले लगा रहे थे। हमारी चौकसी ने सचमुच जीवन बचाने का बड़ा काम किया था। एक दूसरे अवसर पर भी हमारे एक सैनिक ने एक आदमी को पकड़ा था। वह भी ऐसा ही ख़त लिए जा रहा था। मालूम पड़ता था कि उसी दल ने इसे भी लिखा था। इन ख़तों के आधार पर कुछ लोग पकड़े गए। लेकिन ज्यों ही ख़तरा दूर हो गया ये लोग छोड़ दिए गए। इन बातों का पता लगने पर हमें वहाँ की स्थिति की गम्भीरता अच्छी तरह मालूम

हो गई। नतीजा यह हुआ कि जहाँ ज़रा सा भी शब्द हुआ, हम झट पुकारते 'रुक जाओ', चाहे वह आवाज़ पानी में मछलियों के तैरने से ही क्यों न होती रही हो !

एक दफ़े एक बहुत अँधेरी रात में मूसलाधार पानी बरस रहा था। बहुत सर्द हवा बह रही थी। हमारी कठिनाइयाँ नदी की वजह से और भी बढ़ गई थीं। शान्त आक्सस भयंकर पंजशीर बन कर गरज रही थी। न तो कुछ दिखाई देता था और न सुन पड़ता था। यह हमारी सब से कड़ी परीक्षा की रात थी। पानी में ज़रा सी भी आवाज़ होती कि हम उसी दिशा में गोली चला देते। लगातार गोलियाँ चलने से किले की फौज़ के सेनापति का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। वह सीधे हमारे पास घोड़े पर सरपट आया। लेकिन सरपट की आवाज़ हमें मुश्किल से सुन पड़ती थी। हम लोगों ने (जो दो आदमी पहरे पर थे) आवाज़ दी, 'एशताँएथ' (ठहरो), 'प्रोपोरकी' (बोलो—कौन हो ?) लेकिन कुछ उत्तर न मिला। हम ने उसी ओर बन्दूकें तान दीं, जिधर से घोड़े की आवाज़ आ रही थी। और हम बन्दूक के घोड़े को दबाने ही वाले थे कि बिजली चमक उठी और उस आदमी की जान बच गई। हम परेशान हो गए और समझ न सके कि क्या करना चाहिए। वह व्यक्ति हमारे निशाने को देख शून्य हो गया। थोड़ी देर बाद हम ने अपनी बन्दूकें कन्धे पर रखीं और उस से पूछा कि उस ने 'एशताँएथ' और 'प्रोपोस्की' का उत्तर क्यों नहीं दिया था ? उस ने क्षमा माँगी और कहा कि बरसात और नदी के शोर के कारण कुछ सुन न पाया था। उस ने हम से बार बार गोली चलाने का कारण पूछा। हम ने इसके कारण बताए। उसे इस से सन्तोष हो गया। और वह लौट गया।

उस बिजली को धन्यवाद है ! यदि उस समय कहीं हम ने घोड़े दबा दिए होते तो सारा एहसान मिट्टी में मिल गया

होता, और हमारे मुँहों में कालिख लग गई होती। कमाण्डर सुरक्षित लौट गया। हमें इसी का सन्तोष था। तमाम अक्टूबर भर हम ने इसी प्रकार अपना सैनिक जीवन व्यतीत किया।

तुर्कमानों की हार

अक्टूबर के अन्त में कुछ नई सेना ले कर एक छोटी जहाज़ सहायता देने आ पहुँची और हमें छुट्टी मिल गई। जहाज़ ने आते ही नदी के दोनों किनारों पर गोले बरसाने शुरू किये। विप्लवियों से शत्रुता रखने वाले तुर्कमानों के पैर उखड़ गये और बिना किसी प्रकार का मुक़ाबला किये ही वे एक दम भाग खड़े हुए। उन के भागने की खबर पाते ही बोखारा की विप्लव समिति ने एक घोषणा-पत्र द्वारा इस बात की सूचना दी कि वे सब लोग जिन्हों ने, विद्रोह में भाग लिया था, क्षमा कर दिये गये हैं। और उन से अनुरोध किया कि वे शान्तिमय जीवन बितावें। इस के बाद जो ज़मीन कुलत्यक और कालान्टर के अधिकार में थी, वह सब उन लोगों को दे दी गई, जिन्होंने खेतीबारी करने की इच्छा प्रकट की, दो सप्ताह भी न हुए होंगे कि वही लोग जो विद्रोही हो गये थे, समिति के हितचिन्तक हो गये। तुर्कमानों ने जो अमीर द्वारा भुलावे में डाले गये थे, अब क्रान्ति का महत्व समझा तथा वे पश्चाताप करने लगे। वही किरकी और तिरमीज़ के चारों ओर के स्थान जो कि कुछ ही समय पहिले रणक्षेत्र थे, जहाँ दिन रात गोलेबारी के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं सुनाई देता था; अब एक शान्तिमय निवास-स्थान हो गया। प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने व्यवसाय में लग गया। भय का कहीं नाम भी न रहा। इन सब का कारण यही था कि विप्लव का जन्म किसी प्रतिशोध की भावना से नहीं हुआ था। विप्लव समिति पर यह बात भली भाँति प्रकट थी कि अमीर बिचारे कृषकों की

अज्ञानता का अनुचित लाभ उठाते हैं और यदि एकबार भी विप्लव के महान आदर्श को वे समझ गये तो फिर वे उस का विरोध कदापि नहीं करेंगे। अन्त में यही हुआ भी। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि दैव-वशात् एक तुर्कमान जिस ने हम लोगों को युद्ध के समय क़ैद किया था, एक दिन बाज़ार में ख़रबूज़े बेचते हुए मिल गया। हम लोगों को दूर से देखते ही वह दौड़ता हुआ आया और बार बार बड़े अदब से सर झुका कर सलाम करने लगा और हमारे साथ किये हुये दुर्व्यवहारों के लिये क्षमा माँगने लगा। उस ने यह स्वीकार किया कि उन के मुल्लाओं और कलन्तरों ने उन्हें हर तरह से उल्टी सीधी पट्टियाँ पढ़ाईं और घृणा के भाव फैलाये। उन्हीं की प्रेरणा से उन्हों ने ऐसा दुःसाहस किया था। उन्हों ने जान बूझ कर बोखारा के विप्लव का वास्तविक कारण इन कृषकों को नहीं बतलाया और उन्हें बहकाकर जिस के विरुद्ध चाहा उन्हें सिड़ा दिया। एक दिन हम ने इन तुर्कों से पूछा कि अब जदीदियों के प्रति उन के विचार कैसे हैं? उन्हों ने एक स्वर से उत्तर दिया 'हम पर अत्याचार करने वाले इन कलन्तर और अमीर के पंजे से हमारी मुक्ति की आयोजना करने वाले ये जदीदी ही हैं। वर्तमान शासन प्रणाली से हमें गांव की सोवियट (पंचायत) बनाने के अधिकार मिले हैं। जितनी ज़मीन में हम खेती बारी कर सकते हैं, वह हमें बिना किसी प्रकार के कर दिये ही मिल जाती है। इस नयी शासन पद्धति में हम अब सुख चैन से रहते हैं।

चरजुई की यात्रा

देश में शान्ति स्थापित हो गयी थी। अतः हम लोगों को आगे बढ़ने की सुविधा मिल गई। समिति के सभापति और अन्य सदस्य हमें इतना शीघ्र जाने देना नहीं चाहते थे। हम ने किरकी

की रक्षा के लिये जो कुछ सहायता दी थी, उस के बदले में हमें यथोचित पुरस्कृत किये वे विना हमें छोड़ना नहीं चाहते थे। किन्तु हमारे लिये और आगे बढ़ना अत्यन्त आवश्यक था क्योंकि हम यहाँ काफी समय रह चुके थे। अन्त में उन्हों ने हमें जाने की सम्मति दे दी। अत्यन्त आदर और सम्मान के साथ हमारी बिदाई हुई। हमारे सौतेले भाइयों ने भी इस आदर और सत्कारमें भाग लिया। दूसरे ही दिन हमारा जहाज़ "चरजुई" पहुंचा, किन्तु रात होने के कारण हम सब प्रातःकालकी प्रतीक्षा करते रहे। अभी सबेरा भी न हुआ था कि सैनिकों की ट्रम्पेट (अंग्रेज़ी बाजा) और स्वागत वैन्ड का स्वर सुनाई पड़ने लगा और सूर्योदय के पहले ही विप्लव समिति ने बड़ी धूम-धाम से हमारा स्वागत किया। "किरकी के रक्षकों की जय" "भारतीय मित्रों की जय" "अन्तर्जातीय जन संगठन की जय" इत्यादि गगनभेदी कोलाहल से आकाश गूँज उठा। पुष्पवर्षा के बाद हम लोगों का एक जलूस निकाला गया, जो कि अन्त में एक अच्छे सजे हुए अतिथिगृह को पहुँचा। नियमानुसार वक्तृताएँ और जलसा होता रहा। भोजन करने के बाद हम में से कुछ लोग नगर-भ्रमण के लिये निकल पड़े। चरजुई नगर तिरमिज़ और किरकी से कुछ बड़ा है। यहाँ रेल का जंकशन भी है। क्रासनोवस्क से तासकन्द और बोखारा की लाइन यहीं से गुजरती है। बड़ी बड़ी मसजिदों की ऊँची सुनहली मीनारें और गिर्जों के बुर्ज़ नगर की शोभा बढ़ा रहे थे। बग़ीचे और नाट्यमन्दिर नगर के प्रत्येक भाग में थे। वहाँ के निवासियों में उसवेग, रूसी और यहूदी लोगों की संख्या अधिक है। बुद्धि और मस्तिष्क की दृष्टि से यहूदी लोग औरों से बढ़े हुए हैं। हम लोग नगर परिभ्रमण में व्यस्त थे, और विभिन्न संस्थाओं को देखने में लगे ही थे कि इतने में स्थानीय विप्लव समिति को एक तार इस आशय का मिला कि हम शीघ्राति-

शीघ्र ताशकन्द को भेज दिये जायँ। हम में से कुछ लोगों ने वहां जाना अस्वीकार किया। वे क्राशनोवस्क और बाकू हो कर अनाटोलिया जाने के लिये ज़िद करने लगे। समिति के सदस्यों ने उन को अपनी परिस्थिति समझा कर यह बतलाया कि वे भेजने के लिये लाचार हैं। अनाटोलिया जाने की अनुमति देना उन के हाथों में न था। इस विषय में यही उचित था कि ताशकन्द के अधिकारियों से अनुमति ली जाय, किन्तु उन मित्रों ने एक भी न सुनी। और अपने ज़िद पर डटे रहे। अधिकारियों को बाध्य हो कर उन्हें क़ैद करना पड़ा। ऐसी विचित्र परिस्थिति की उन को कल्पना भी न थी और न वे इस के लिये तैयार ही थे। उन बेचारे सदस्यों ने भरसक चेष्टा की कि वे लोग हमारे साथ रेल पर बोखारा चलें या जब तक की ताशकन्द से कोई अन्य आदेश न आ जाय। वहीं रह जायँ। पर उन्हों न कुछ भी न माना और ज़बर्दस्ती क्राश्नोवस्क को गाड़ी पर सवार होने को उद्यत हो गये।

बोखारा

हम लोग अब निरुपाय हो कर अपने हठीले साथियों को अपने भाग्य का निपटारा करने के लिये वहीं छोड़ कर, गाड़ी पर सवार हो गये। गाड़ी बुख़ारा को रवाना हो गयी। रात को हम लोग कालगन पहुँचे। वहाँ हम लोगों को बुख़ारा के लिये गाड़ी बदलनी पड़ी। बुख़ारा पहुँचते ही धूम-धाम से हमारा स्वागत हुआ। इस स्वागत का विशेष कारण भी यही था कि हम लोग नदी के किनारे किरकी की रक्षा करने में सफल हुए थे। हमारी सेवाओं के उपहार स्वरूप प्रत्येक बोखारा निवासी ने अपने रीत्यानुसार हम को एक एक सम्मान सूचक अचकन भेंट दी। हम अपनी सेवाओं के बदले भेंट

स्वीकार करना नहीं चाहते थे, हम यह नहीं चाहते थे कि साधारण अतिथि के सिवा हमारा और किसी अन्य दृष्टि से सत्कार हो। पर उन के इस अदम्य उत्साह के सामने हमारी कुछ भी न चली। हमें उन से हार माननी ही पड़ी। उन के सत्कारों के लिये हम ने उन्हें आन्तरिक धन्यवाद दिया। प्राच्य देशों के निवासी चाहे वह साम्यवादी अथवा अन्य किसी सिद्धान्त के मानने वाले हों, किन्तु परम्परागत अतिथि-सत्कार का स्वभाव उन में अवश्य ही पाया जाता है। बोख़ारा की जदीदी सरकार ने बड़ी श्रद्धा से हमारा सत्कार किया। उन्हीं प्रासादों को जो कि किसी समय स्वेच्छाचारी अमीरों के भोग-विलास के केन्द्र थे, इस समय सरकार ने अतिथि-गृह बना रखा था। हम लोग भी इसी प्रासाद में ठहराये गये। अचकन को पहने हुए उस समय हम लोग पारसी यात्रियों की भांति दीखते थे। बोख़ारा निस्सन्देह प्राच्य सभ्यता का एक निराला शिक्षा-केन्द्र है। नगर में एक बहुत बड़ा मकतब शिक्षा-प्रचार के लिये है। हमें तिरमिज़, किरकी और ताशकन्द ऐसे छोटे नगरों से बोखारा का दृश्य विशेष मिलता-जुलता नहीं मालूम हुआ। नगर के सभी बाज़ार पक्के बने हैं। उन के ऊपर छतें बनी हुई हैं। सड़कें अधिक चौड़ी नहीं हैं। नगर बड़ा सुन्दर और रमणीक दिखाई देता है। पर यहाँ हमें रूसी ललितकला कहीं भी दिखाई न पड़ी। बोखारा पूर्णतया पारसी नगर है। शहर में व्यापारियों के लिये सरायें हैं। अफ़ग़ानिस्तान यारकन्द तथा काशगर के सुदूर प्रदेशों से व्यापार होता है। अभी तक हम जिन अन्य नगरों से गुजरे, वहाँ हम ने ये बातें नहीं पाईं। यहाँ भी अफ़ग़ानिस्तान की तरह प्रातःकाल व्यापारियों के ऊटों के गले में बँधी हुई घण्टी की मृदुल-ध्वनि से लोगों की आँखें खुलती हैं। यह ध्वनि

साधारण सुरों से कुछ भिन्न होती हैं और उस में एक प्रकार का आकर्षण तथा मृदुलता होती है। उस मृदुल ध्वनि में एक अनोखी सम्मोहिनी शक्ति है, जो कि हर एक सुनने वाले पर अपना प्रभाव डालती है। छोटी बड़ी विभिन्न पक्षियों के उस गाने को सुनने से ही कोई उस को ठीक अनुभव कर सकता है, लिख कर उस का ठीक ठीक वर्णन होना सम्भव नहीं।

शासन परिवर्तन के साथ धीरे धीरे यहाँ के रीति रिवाजों में भी कुछ कुछ परिवर्तन हो रहे थे। इस परिवर्तन से नगर की शोभा में भी कुछ वृद्धि हुई है। पर पुराना बोखारा अब भी वही अपनी प्राचीन संस्थाओं को ले कर खड़ा है। हाँ, इतना ज़रूर है कि इन संस्थाओं में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है और आज उन में एक नया रंग दिखाई देता है। जिन संस्थाओं ने किसी समय धार्मिक मदान्धता के रंग में रंगे हुए शिक्षकों को उस्बेग और तुर्कों की अज्ञानता में डुबो रखने और उन को परस्पर लड़ाने के लिये जन्म दिया, वहीं आज उन शिक्षकों का प्रारम्भिक जीवन बीतता है, जो बाहर आ कर उत्पीड़ित लोगों में साम्यवाद का सन्देश सुनाते हैं। किसी रंग या जाति विशेष के कारण नहीं, पर एक जन साधारण के लाभार्थ ही वे लोगों को संगठित होने का उपदेश देते हैं। विप्लवियों के अदम्य उत्साह के फलस्वरूप सैयद, उस्बेग ताज़क और तुर्की ये सब विभिन्न जातियाँ अब एक संगठित जन-सङ्घ में शामिल थे। नगर में जदीदियों की पोशाक पहने हुए अफ़सर और पुराने ज़माने के ढीले पायजामे पहने हुए दूकानदारों का घूमना तुरन्त ही दर्शकों की दृष्टि आकर्षित करता है। लोगों ने अपनी पुरानी पोशाक नहीं छोड़ी. पर अमीर उलमौमिन (मुसलमानों के सर्दार) और बादशाह के एक छत्र आधिपत्यविषयक पुराने

विचारों की तिलांजलि दे दी थी। आबाल-वृद्ध-बनिता सब अमीर के कट्टर विरोधी थे।

बोखारा विप्लव के कारण

बोखारा में तीन दिन रह कर हम लोग वहाँ की स्थिति और परिवर्तन से पूरे परिचित हो गये। अमीर और उन के लोगों के अत्याचार ने ही विप्लव का जन्म दिया था। अमीर के भोग-विलास की वासना की तृप्ति के सामने कोई भी सुन्दर लड़का या लड़की सुरक्षित न थे। पर्दे की वह पर्वा ही नहीं करता था। उस के कर्म्मचारी जहाँ किसी सुन्दर बालक या बालिका को देख पाते, तुरन्त उन्हें उन के माता पिता और गुरुजनों से छीन कर अमीर के प्रासाद में उठा ले जाते। अमीर घोर शराबी असंयमी और अत्यचारी था। समाज के इस नारकीय पतन की मैं आलोचना करना नहीं चाहता, पर साथ ही साथ सत्यता पर कुछ प्रकाश डाले विना भी नहीं रह सकता। यहाँ पुराने ज़माने के बादशाहों से भी कहीं ज़्यादा अय्याशी का साम्राज्य था। सम्राट मुहम्मद शाह जो कि भारतवर्ष में रँगीले कहे जाते हैं, अमीर उन से किसी प्रकार भी कम व्यसनी और विलासी न था। अपना ख़ज़ाना भर रखने के लिये बेचारी प्रजासे अन्धाधुन्ध टैक्स वसूल किया करता था। उन में किसी प्रकार के सुसंगठित विद्रोह की सृष्टि न होने पावे, इस उद्देश्य से अमीर मुल्लाओं को उन के पास भेजता था जो कि उस के अच्छे शासन की गाथा प्रजा को सुनाते थे। धर्म के नशे में जनसाधारण को हिताहित का ज्ञान नहीं रहता है। मुल्लाओं के प्रचार से बेचारे अनपढ़ तुर्क और उसबेग लोग इतने मदान्ध हो गये कि उन्हों ने अमीर का ही पक्ष लिया। फलस्वरूप वह बोखारा जो

किसी समय एक अत्यन्त समृद्धिशाली नगर था, आखीरी अमीर के शासनकाल में नरक तुल्य हो गया। शासन में किसी की भी सुनवाई न होती थी। यदि कोई अन्याय का विरोध करता तो उसे क्रूर दण्ड दिया जाता। अमीर के विरुद्ध आन्दोलन उठाना अक्षम्य अपराध था। बोखारा के कितने ही नौ-निहाल और होनहार युवक तुर्किस्तान में जा कर छिपे रहे। जिस समय ज़ार के शासन का अन्त कर दिया गया, उस समय सब अपने अज्ञातवास को छोड़ कर रूस पहुँचे और उस देश के विप्लव-पन्थियों की कार्य्यप्रणाली का अध्ययन करने लगे। इस के अनन्तर वे बोखारा पहुँचे और वहाँ विद्रोहाग्नि जलाने की चेष्टा में लग गये। लोगो ने विद्रोह की घोषणा की। पर प्रथमवार सुसंगठित न होने के कारण वे असफल हुए। विफलता के साथ साथ ही उस की प्रतिक्रिया का होना स्वाभाविक है। विप्लव-प्रचेष्टा में सफल न होने का मूल्य विद्रोहियों को देना पड़ा। विप्लव के समय और उस के बाद कितने ही उत्साही युवकों को मृत्यु का आलिंगन करना पड़ा और अत्याचार उत्तरोत्तर बढ़ता गया जिस किसी पर कुछ भी सन्देह हुआ उसे ही बड़ी कड़ी सज़ाएँ दी गईं। इन अत्याचारों से उत्पीड़ित हो कर, लोग मरने-मारने पर उतारू हो गये। युवकों का एक दल तुर्किस्तान में भाग गया और उस ने ताशक़न्द में एक सुसंगठित विप्लव-समिति की स्थापना की। जब तैयारियाँ पूरी हो गयीं, तो उन्हों ने अपने रूसी मित्रों से सहायता माँगी। विद्रोह का कार्य्य फिर आरम्भ हो गया। मौत का मुकाबिला करना था। इधर बोखारा में अमीर के अत्याचार बढ़ते ही जाते थे। उन सब लोगों के कुटुम्बों की जो कि विद्रोह में हाथ बटा रहे थे, बड़ी निर्दयता के साथ हत्या की गई। छोटे छोटे दूकानदार विद्रोहियों के विरुद्ध अभ्यधारण करने में मजबूर किये

गये। पर इसी समय विद्रोहियों के गोलों ने बोखारा के सुदृढ़ दुर्ग की चारदिवारी के कुछ हिस्से गिरा दिये। नगर में तुरंत यह खबर फैल गई। जिस के होने की स्वप्न में भी आशा न थी, दैववशात् वैसी ही घटना हो गई। अब अमीर की चिर-विजयी सेना पर से जन समूह का विश्वास उठ गया और विप्लवियों का साहस और भी बढ़ गया। इधर अमीर की सेना भी थकी मालूम होने लगी। उन्हों ने आधुनिक तोपों का मुकाबिला करने से इन्कार कर दिया। ऐसी अवस्था देख अमीर अपने सलाहकारों के साथ भाग खड़ा हुआ। नगर में प्रजातन्त्र की घोषणा की गई। "बोखारा जनतन्त्र की जय" के नारे सुनाई देने लगे। स्वतन्त्रता के जयघोष से आकाश गूँज उठा।

ताशकंद के लिए प्रयाण

बोखारा के इतिहास में हम छत्तीस लोगों का नाम "किरकी के रक्षक" कह कर लिख लिया गया। बोखारा निवासियों की अपने हिन्दुस्थानी भाइयों के साथ हार्दिक सहानुभूति को देख कर हमारे हृदय भर आये। सचमुच पूर्वी देश के निवासी भावुक होते हैं। बोखारा नगर निवासियों ने अपने आँसुओं से हमारे आन्दोलन के साथ सहानुभूति का परिचय दिया। हमारे वर्तमान जीवन ने उन्हें उन दिनों की याद दिलाई, जब कि वे तुर्किस्थान में छिपे फिरते थे। हम लोगों की उन्हों ने विदाई तो देदी, परन्तु एक कोई अक्षय पारस्परिक आकर्षण रह गया, जिस के कारण कि हम लोग वास्तव में अलग नहीं हो सके। वहाँ उस समय बहुत से भारतवासी हिन्दू और मुसलमान दोनों उपस्थित थे। हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय आन्दोलन का हाल सुनने पर उन्हें जितना उत्साह हुआ हमारे लिये वर्णन करना असम्भव

है। उन में से अनेकों ने अपने घर वार को बेंच कर हमारे आन्दोलन में योग दान कर ने की इच्छा प्रकट की। हमने इन्हें विश्वास दिलाया कि वह समय दूर है, जब कि उन के इस आत्म समर्पण की आवश्यकता होगी।

स्टेशन पर जाकर हम लोग गाड़ी पर बैठ गये। बोखारा के मित्र स्टेशन पर पहुँचाने आये थे। हम लोगों ने उन से विदा ली। गाड़ी छूट गई। साथ ही साथ हमारे मित्र भी दृष्टि-लोप हो गये। हम गाड़ी पर तो बैठ पर हृदय उन्हीं के पास छोड़ आये। प्रातःकाल हम लोग समरकन्द पहुँचे। यही वह स्थान है, जहाँ तेमूरलंग चिरशान्ति की गोद में शयन कर रहा है। समरकन्द अब भी अपने सेवों के लिये प्रसिद्ध है। यहाँ के सेव बहुत मीठे और छोटे फुटवाल के बराबर होते हैं। दूसरे दिन हम अपने गन्तव्य-स्थान ताशकन्द को पहुँचे। हम लोगों में से जिन लोगों ने जबलपुर का स्टेशन देखा था, उन्हें प्रतीत हुआ कि मध्य प्रदेश के उसी स्टेशन पर उन की गाड़ी खड़ी थी। ताशकन्द और जबलपुर के स्टेशनों में बहुत कुछ सदृश्य हैं। अन्य स्थानों के तरह वहाँ भी हमारा स्वागत किया गया। स्टेशन के बाहर मोटरकार थे। उन पर हम लोग अतिथि-गृह में पहुँचाये गये। आचार्य अबदुलरब और बहुत से अन्य लोगों की तरह यहाँ भी कुछ 'व्यवसायी' विप्लवी मिल गये। यहाँ दो मुख्य दल थे। एक के नेता एम० एन० राय (बंगाली) और दूसरे के अबदुल रब महाशय थे। अब्दुल रब के दल के लोग यहाँ पहले ही स्टेशन पर आपहुँचे थे। हम में से जो लोग कुछ कम शिक्षित थे, उन्हें उन्हों ने फाँस लिया था। हम में से बाकी लोगों ने यह तय किया कि हम कुछ दिन तक हर एक दल के वास्तविक कार्य से परिचित होने की चेष्टा करेंगे और मालूम कर लेंगे कि उन में कौन वास्तव में कार्य करने वाले और कौन ढोंगी है। अब्दुल रब

और खलिक के दल का जनसाधारण में अधिक प्रभाव था। पर इन दलों का कार्य यह था कि वे मुसलमानों में अपनी दल की 'गाथा' गाते थे और साथ ही साथ उन दलों के विरुद्ध विष उगलते थे जिन के नेता एम० एन० राय, अबोनि मुखोपाध्याय और मुहम्मदअली थे। हम लोग दर्शक बने रहे और किसी के दल में शरीक नहीं हुए।

बाकू कान्फ्रेंस ।

हम लोगों में से जो तटस्थ थे वे आगामी बाकू कान्फ्रेन्स के लिये भारतवर्ष के प्रतिनिधि चुने गये। यह कान्फ्रेन्स बातों का जमा ख़र्च करने वाले, धूर्त और संदिग्ध चित्त वाले बूढ़ों का जमाव नहीं था। परन्तु इस की छत्र-छाया में आज कल के उत्पीड़ित तथा पहले के ग़ुलाम देशों के नवयुवक एक सच्चे विश्वबन्धुत्व के नाते,भाइयों के समान मिलते थे। उन का हृदय विशाल और उद्देश्य महान होता था। उसबेग तुर्कमान, सर्ड़े, ताज़िक, किरगिज़ आदि पूर्व देशों से तथा पश्चिम के तातार अजेर बैजानियन आदि लोग इस सभा में मिल कर अपने विचार प्रकट करते और निखिल उत्पीड़ित लोगों के संगठन पर ज़ोर देते थे।

भूतपूर्व तुर्की सेनापति

कुछ ऐसे लोग जो कि किसी समय तुर्की की सेना में अफ़सर थे, वे भी वहीं दिखाई पड़े। ये ही लोग जो किसी समय सरकारी फ़ौजों के स्तम्भों में गिने जाते थे, इस समय श्रमजीवियों के अधिकारों के संरक्षक बन गये थे और बारम्बार समस्त प्राच्य देशों के एकत्र संगठित हो जाने पर ज़ोर देते थे। वे साम्यवाद की भावनाओं से अनुप्रेरित थे। निस्सन्देह यह एक बड़ी कायापलट थी।

कुछ हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि अपनी बातों की पुष्टि तलवार की शक्ति से करते थे। लोगों का एक अवोहवा जमाव था। सब के सब उत्साह और भावों से भरे हुए थे। सब लोग अपनी बातचीत और रहन-सहन में सिपाहियों से प्रतीत होते थे। एक ख़ास बात यह थी कि एक ही सभा में पीड़ित और ग़ुलाम प्राच्य के तथा साथ ही साथ स्वाधीन प्राच्य के प्रतिनिधि पास पास बैठे थे। उन सब के हृदय उत्तेजक भाषणों से प्रभावित हो रहे थे। शायद यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि यह सभा अग्नि-ज्वालाओं की लपक थी। शताब्दियों के दबे हुए उत्पीड़ित मनुष्यों की भावनाएँ छिपी हुई आग की भाँति सहसा "भभक" उठी थीं। लाल झण्डों (जन-तन्त्र सूचक) के नीचे एकत्रित हो कर लड़ाके लोग भी वक्ताओं में परिणित हो गये थे। पश्चिम के मज़दूरों और प्राच्य के उत्पीड़ित जनों ने परस्पर भ्रातृत्व सूचक सन्देशों का विनिमय किया। उन अनोखी बातों को देखने से ही कोई उस का अनुभव कर सकता है। लिख कर उस का ठीक ठीक चित्रण करना सम्भव नहीं। सभा समाप्त हो गयी। अनवर पाशा के मतानुसार सभा की कार्य्यवाही में कोई विशेष बड़ी बात नहीं हुई। पर इस में सन्देह नहीं की एकत्रित पुरुषों के हृदयों में नवजीवन का संचार हो गया। और वे सब लोग अपने साथ एक शक्ति हो कर लौट गये। जो विचारे अभी तक अत्याचारों की चक्की में पीसे जा रहे थे, उन सबों में यह भावना पैदा हो गयी कि उन के अस्तित्व की भी महान सार्थकता है। संसार के पीड़ित जनों के उद्धार कार्य्य में वे बहुत कुछ कर सकते हैं।

नये शासन के लाभ

इस अध्याय के समाप्त करने के पूर्व हम कुछ पंक्तियों में ज़ार के शासनाधीन बोखारा और ख़ीवा की स्थिति का वर्णन

करेंगे। साथ ही साथ यह भी बतलायेंगे कि आजकल नये शासन में वहाँ की स्थिति कैसी है। ज़ार के शासन काल में यह दोनों प्रान्त पूर्णतया पराधीन थे। उन के अपने कोई भी अधिकार न थे। अमीर और मुल्लाओं के स्वेच्छाचारी सलाहकार लोग आपस में सब अधिकार दबाये बैठे थे। अमीर अपने भोग विलास में ही लगे रहते थे। वे नाम मात्र के शासक थे। उन के हाथों में कोई अधिकार न था। देश में व्यक्तिगत स्वाधीनता का नाम भी न था। राजनीतिक आन्दोलन में भाग लेने वालों पर सदा शासकों की क्रूर दृष्टि बनी रहती थी। बुरे से बुरे अपराधों के अपराधियों से भी कठिनतर दण्ड उन्हें दिया जाता था। ज़ार के अधिकारियों को सन्तुष्ट रखने के अभिप्राय से अत्यधिक कर लगाये जाते थे। इस अत्याचार की व्यथा बेचारी निःसहाय प्रजा के लिये असह्य हो गयी थी। किसी के विरोध की कुछ भी सुनवाई न थी और न तो कोई आवेदन पत्र मंजूर होता था। अमीर के नाम से लोगों पर डिग्रियां जारी की जाती थीं, पर वास्तव में स्वेच्छाचारी अफसरों की ही वह करतूत होती थी। डिग्रियों के विरुद्ध किसी को कुछ कहने का अवसर नहीं दिया जाता था। यदि कभी कभी कोई मुल्ला विरोध करने का साहस करते तो वे तुरन्त पदच्युत कर दिये जाते थे। बोख़ारा और ख़ीवा के सिवा तुर्किस्तान के अन्य स्थानों को धार्मिक बातों में स्वाधीनता न थी। वहां के जुम्मा मसजिद के मौलवी ने हम लोगों को बतलाया कि लोगों को मसजिदों में अज़ान पुकारने की मनाही थी। यहूदी लोगों की भी ऐसी ही दुर्दशा थी। मुसलमान और उन लोगों के लिये शिक्षा पाने की सुविधायें न थीं। मेट्रिकुलेशन (वर्तमान दसवाँ कक्षा के समान) कक्षा के आगे इन लोगों का पढ़ना असम्भव था। सन् १९१४ में जब लड़ाई छिड़ी तो इन रियासतों को यह आदेश मिला

कि वे अधिक से अधिक धन और जन से सहायता दें। उन दिनों यहाँ के निवासियों की दशा ख़ास रूस देश के लोगों की अपेक्षा कहीं अधिक बुरी थी। जब १९१७ में रूस में भीषण क्रान्ति भड़क उठी, यहाँ के मुल्लाओं ने अवसर पा कर रूस से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया और स्वाधीनता की घोषणा कर दी। पर वास्तव में यह स्वतन्त्रता अमीर और उन के अफ़सरों का रचा हुआ मायाजाल था। समस्त रूसी कर्म्मचारी बर्खास्त कर दिये गये। पर इन बातों से साधारण प्रजा को कुछ भी लाभ न हुआ, उन के पैरों में ग़ुलामी की ज़ंजीरें अब पहले से भी अधिक ज़ोर से जकड़ दी गयीं। दरबार में भोगविलास का साम्राज्य हो गया। अमीर अपने सुलतान होने का स्वप्न देखने लगे। उन की इस वासना के फलस्वरूप अत्याचार और अन्याय और भी बढ़ गया। अनन्तर ख़ीवा में लोगों ने विप्लव की चेष्टा की और उस में उन्हें सफलता भी मिली। बोख़ारा में भी विद्रोहाग्नि भड़की, परन्तु प्रथम बार लोग असफल रहे। उन्हों ने कटिबद्ध हो फिर क्रान्ति मचा दी, और इस बार अमीर तथा उन के कर्म्मचारीगण—सब के सब-परास्त हो गये। जनतन्त्र की घोषणा हो गई। ख़ीवा और बोख़ारा में पहले ही से जनसंघ स्थापित थे। इन्हीं दलों ने उस समय शासन भार अपने हाथों में ले लिया। तुर्क और उसबेग लोगों के प्रजातन्त्र की घोषणा हो गयी। इन स्वाधीन प्रजातन्त्रों की शासन प्रणाली में दख़ल देने का अधिकार सेन्ट्रल सोवियेट (केन्द्रीय प्रजातन्त्र) को न था। वर्तमान रूस, कई स्वाधीन प्रजातन्त्रों का समूह है, और वहाँ के प्रत्येक प्रजातन्त्र को अपनी शासन सम्बन्धी बातों में पूर्ण स्वाधीनता है। परन्तु विदेशियों के आक्रमण होने पर वे सब परस्पर एक दल में संगठित हो जाते हैं।

जब हम लोगों में से कुछ अब्दुलरब और कुछ राय के दल में शामिल हो गये उस समय मैं (लेखक) अकेले पड़ गया। उन विरोधी दलों के ईर्षापूर्ण भावों को देख मेरी तो तबियत ऊब गई। भारतवर्ष से हज़ारों मील की दूरी पर होते हुए भी हिन्दुस्तानियों में अपने देश की सी पारस्परिक ईर्षा थी। ऐसा प्रतीत हुआ कि रूस के महान विप्लव का इन भारतीयों पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा है। दोनों दल के नेताओं में से, एक के तो नाम के भूखे और पद के लोभी थे; कार्य्य करने की इच्छा बहुत कम थी; स्वभाव के भी हठी और छली थे। दूसरे दल के नेता स्वभाव से सरल, स्पष्टवादी, सच्चे कार्यकर्त्ता और विद्वान थे। मार्क्सवाद (साम्राज्यवाद) तथा अन्तरराष्ट्रीय राजनीति का उन्हें गंभीर ज्ञान था। पर इन सब गुणों के होते हुए भी उन में एक बड़ी कमी यह थी कि उन में कर्म्मपटुता न थी। मैं उन दोनों सज्जनों से दूर रहा और व्यावहारिक राजनीति का अध्ययन करने लगा। हमारे इस कार्य्य में लोगों ने सब प्रकार की सुविधायें प्रदान कर दीं, विशेष कर राय महाशय ने मेरे इस अध्ययन कार्य्य में विशेष सहायता पहुँचाई।

अंडीजान की यात्रा

अपने साथियों को उन के इच्छानुसार स्थानों में छोड़ कर मैं फरगना को रवाना हुआ। रास्ते में अण्डीजान मिला। यहीं प्रसिद्ध तैमूरलंग का जन्म हुआ था। पामीर के ठीक उत्तर के मैदानों पर यह नगर बसा हुआ है। शहर के दो भाग हैं। एस्की शहर (पुराना शहर) तथा दूसरा नोवोगेरड (नया शहर) एस्की नगर का नाम तुर्कों की भाषा में है, चूंकी यहाँ के निवासियों में तुर्कों की संख्या ही अधिक है। इस कारण रूसी लोगों ने इस नाम का विरोध नहीं किया। नोवोगेरड नाम रूसी भाषा का

है। यहाँ की आबहवा इतनी मनोरम तथा स्वास्थवर्द्धक है कि लोग जबलस्सराज नगर को भी इस के आगे भूल जाते हैं। फलों की पैदावार अत्यधिक है। विशेष कर अंगूर, सेव, किसमिस, और अखरोट यहाँ बहुतायत से मिलते हैं। मैं यहाँ अब भौगोलिक बातों का वर्णन न कर दूसरी बातें बत-लाऊँगा। अन्दीजान में एक रूसी अफ़सर ने मेरा परिचय एक महाशय से करवा दिया। वह सज्जन अपने को तैमूरलंग के वंश का बतलाते थे। वे अपनी वंश-परम्परा की नवीं पीढ़ी के थे। चूँकि वे फ़ारसी भाषा जानते थे, इस कारण हम दोनों में बातचीत होने लगी। उन्हों ने हास्यपूर्ण शब्दों में कहाः—'दोस्त हमारा तो तुम्हारे देश के ऊपर अधिकार है। तुम मुझे भेट दो। मैं हिन्दुस्तान का सुल्तान हूँ। मुझे भारतवर्ष में वहाँ वालों पर शासन करने के लिये कब ले जाओगे?' सोवियेट रूस में इस प्रकार की बातों को सुन कर मुझे अत्यन्त दुःख हुआ। उस की दिल्लगी को मैं समझ न पाया था। मेरे चेहरे के रंग को बदला हुआ देख कर वह ताड़ गया और खिलखिला कर हँस पड़ा। मैं भी अब उस की बातों के यथार्थ तात्पर्य को समझ कर उस के साथ हँसने लगा। इस के पश्चात् मालूम हुआ कि काशगर के अफ़सर ने उन्हें नगर से अलग कर दिया था। तब बाद को हम से उन की .खूब मित्रता हो गई।

यहाँ सर्ड जाति के बहुत से ऐसे विद्वान लोग थे, जो भारत वर्ष के भविष्य के सम्बन्ध में बड़ी दिलचस्पी लेते थे। अफ़गानी समाचार पत्रों को पढ़ कर उन्हें यह मालूम हो गया था कि हिन्दुस्तान में एक राष्ट्रीय आन्दोलन चल रहा है। मैं ने उन लोगों को इस आन्दोलन के उद्देश्य तथा कार्य्य-प्रणाली बताई। मुसलमानों ने इस आन्दोलन में कहाँ तक और किस प्रकार से कार्य्य किया यह सुन कर उन लोगों को अत्यन्त दुःख हुआ।

पाठकों को यह सुन कर आश्चर्य होगा कि उन लोगों की सहानुभूति मुसलमानों से कहीं अधिक हिन्दुओं के साथ थी। भारतीय मुसलमानों की भारतान्तर देशभक्ति (Extra territ-orial patriotism) उन्हें नापसन्द थी। बिचारे मुसलमानों पर उन्हें दया आती थी। उन के हृदयों में देश प्रेम की भावना न रहने के कारण उन लोगों ने उन की कड़ी निन्दा की। प्रत्येक मनुष्य को अपनी मातृभूमि की सेवा करना उचित है, अपनी इस बात के समर्थन में उन लोगों ने कुरान की नज़्में सुनाईं।

उन सज्जनों में एक सज्जन अभी हाल ही में जर्मनी से लौट कर आये थे। वहाँ रहने वाले भारतीय देशभक्तों की तथा महात्मा गान्धी की पूर्वी अफ्रिका में की हुई सेवाओं का, उन्हों ने अत्यधिक प्रशंसा सूचक शब्दों में वर्णन किया। साथ ही साथ इन्हीं सज्जन ने खेरी भाइयों और अब्दुलरब के कार्य्यों की अत्यन्त कड़े शब्दों में आलोचना भी की। बात करते करते आखिर में अत्यन्त जोश और कुछ क्रोध के साथ उन्हों ने मुझ से यह अनुरोध किया कि मैं देश में लौट कर उन का यह सन्देश मुसलमानों से कह दूँ कि जब तक वे (मुसलमान) अपनी संकीर्णता को छोड़ देश सेवा की भावनाओं से ओत-प्रोत नहीं होते हैं, तब तक तुर्किस्तान के मुसलमानों की उन से कोई भी सहानुभूति न होगी। इन में से एक महाशय ने यह भी कहा कि मुल्लाओं के कारण ही मुसलमानों की ऐसी दुर्दशा है।

भारतीय मुसलमानों की करतूतों की सब लोग बड़ी समालोचना करने लगे। दुर्भाग्यवश मुसलमान होने के कारण दुख और लज्जा के कारण मैं पसीना से तर हो गया। पर मैं भी तो उन लोगों के समान लाचार था। मेरी बातों की सुनवाई कैसे हो सकती थी ? इन उदार—

भावनाओं का प्रचार करना उन की दृष्टि में काफ़िर होने का जुर्म करना था। ये ही लोग जो कि किसी समय ख़ानाबदोश थे, अब समाज के हर विभाग में तेज़ी से क़दम रखते हुए उन्नति पथ पर आगे बढ़ रहे थे। उन की पूर्व अवनति का स्थान अब ज्ञान और शिक्षा की लालसा ने ले लिया था। धीरे धीरे पर्दे के बदले पगड़ी और हैट का रिवाज शुरू हो रहा था। सामयिक विचारों का स्रोत उत्तर पश्चिम भाग से टर्की के इस सुदूर भाग में भी बहने लगा था। विज्ञान तथा उन्नति की आवाज़ देश में चारों ओर सुनाई पड़ रही थी।

साम्यवाद का प्रचार तथा प्रसार के साथ साथ युवकों के हाथ में नई शक्ति और उत्साह पैदा हो रहा था। हमारे देश के किसी काँग्रेसी नेता को यह जान कर आश्चर्य्य होगा कि वहाँ २१ और २२ वर्ष के नवयुवक कई ज़िलों के शासक (कमिश्नर) नियुक्त किये जाते हैं। इस नीति का कारण मुझे यह बताया गया कि वृद्धों की आन्तरिक दृष्टि प्रायः शून्य होती है। पर युवक किसी भी तरह बुराइयों में नहीं फँसते। साथ ही देश का भविष्य युवकों पर ही निर्भर करता है, अतः यह आवश्यक समझा जाता है कि वे अपना अध्ययन समाप्त कर जितनी जल्दी सम्भव हो, शासन करना सीखें।

ताशक़न्द को प्रत्यागमन

१९२१ की जनवरी के आरम्भ में ही मैं पुनः ताशक़न्द लौट आया और मास्को के लिए तैयारी करने लगा। जनवरी का महीना संसार में सब से अधिक ठण्ढा महीना है, किन्तु यह तुर्किस्तान और मास्को जैसे अरक्षित स्थानों के लिए बहुत भयानक है। सड़कें और गलियाँ बर्फ से ढक जाती थीं। सड़क साफ़ करने वाला बेचारा मेहतर सड़कों पर से बर्फ का

ढेर हटाया करता, किन्तु दूसरे दिन उस से भी बड़ा ढेर उसे जमा मिलता था। वहाँ वर्फ पर चलने वाली एक प्रकार की विना पहिये की गाड़ी न हो तो, वहां कोई भी काम होना असम्भव हो जाय। इन वर्फ की गाड़ियों के कारण एक दिन एक बड़ी मजेदार घटना हुई। और दिनों की तरह मैं उस दिन भी ताशकन्द के बाज़ारों में खूब अच्छी तरह गाड़ी हाँक रहा था। एकाएक वह उलट पड़ी। मैं वर्फ के एक गहरे गड्ढे में और गाड़ी मेरे ऊपर। घोड़ा जहाँ का तहाँ खड़ा रहा। रोशनी के एक खम्भे से लड़जाने के कारण यह घटना हुई थी। एक ऊनी ओवर कोट को अच्छी तरह लपेटे रहने के कारण, मेरे लिये हिलना-डुलना असम्भव हो गया ड्राइवर महाशय की गर्दन घोड़े से भिड़ गयी थी। मेरे भाग्य अच्छे थे कि घोड़ा वहाँ से हटा नहीं; नहीं तो वह गाड़ी खींचता और वहीं दब कर मेरा अन्त हो जाता। उस वर्फ के गहरे गढ़े का भी मैं कृतज्ञ हूँ, जिस के कारण मुझे कोई चोट न आई। बड़ी कठिनाईयों से ड्राइवर मुझे बचाने में समर्थ हुआ। वाद को मैं ने ऐसी कला बाज़ी की जोखिम उठाने से पैदल जाना ही वेहतर समझा।

तुर्किस्तान

यहाँ वापस आ जाने के बाद मैं ने यहाँ की स्थिति और तुर्किस्तान के मुसलमानों की क्रान्ति के विषय में अध्ययन करना आरम्भ किया। मैं कट्टर मुल्लाओं से लेकर उग्र कम्युनिस्ट तक के प्रत्येक केन्द्र में घूमा। जहाँ तक कि क्रान्ति के मुख्य सिद्धान्तों से सम्बन्ध था, ये सब लोग क्रान्ति के समर्थक थे। इन्हों ने इस का प्रवल समर्थन किया। तुर्की महिलाएँ पर्दों की चिरकालीन प्रथा की धज्जी उड़ाकर आधुनिक पोशाक में दिखाई देने लगीं। हर जगह परम्परा की वेड़ी काटी जा रही थीं।

ऐसा मालूम होता था कि सारा राष्ट्र बन्दीशाला से छूट कर राजनीतिक तथा आध्यात्मिक उपायों से क्रान्ति को सबल बना रहा था। वही लड़के जो क्रान्ति के पहले सड़कों पर मारे मारे घूमा करते थे, आज शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। ज्ञान और शिक्षा का द्वार इन सब के लिए खुला है। बैरेक और कार-खानों में भी उन के स्कूल हैं। सारा राष्ट्र लिखना-पढ़ना सीखने में तल्लीन है। नई संस्थायें बच्चों को अपने देश की आशा समझती हैं। सोवियेट सरकार की दृष्टि में उस का सारा भविष्य भावी युवकों पर ही निर्भर करता है वहाँ के छात्रों को किसी तरह के ख़र्च की कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ती। प्रत्येक वस्तु सरकार द्वारा उन्हें दी जाती है। और नई सरकार हर तरह से निरक्षरता से संग्राम कर रही है।

समस्त अभिनय-शालाओं में क्रान्तिकारी विज्ञप्तियाँ तथा घोषणाएँ वितरित की जाती थीं। सराय और होटलों में क्रान्ति के महान नेताओं की जीवनी, स्वास्थ्य, कला-कौशल, विज्ञान इत्यादि गंभीर विषयों की पुस्तिकाएँ मुफ़्त में बाँटी जाती थीं। श्रमजीवियों के लिये नाटक भवन और पुस्तकालय बन रहे थे। ज्ञान का द्वार जो अब तक द्वेष-वश जनसाधारण के लिये एक दम बन्द रखा गया था अब उन के लिये बिल्कुल उन्मुक्त हो गया था। तातार, तुर्किस्तान, सर्द, यहूदी, उसबेग आदि जो अब तक सामाजिक समानता के अधिकारों से वंचित थे, उन्हें केवल सामाजिक ही नहीं वरन आर्थिक और राजनीतिक समान अधिकार भी प्राप्त हो गये थे। पूँजीवाद की जड़ को काट कर चालीस भिन्न जातियाँ, एक हृदय एक संगठन, एक शासन और एक समाज में परिणत हो गयी थीं; जिसे देख बहुतों को तो ईर्षा होती थी। वे अपरिचित विघ्न बाधाओं का सामना करते हुए अपने उत्साह, धैर्य्य और उद्योग से संसार के सन्मुख एक नवीन

शासन और एक नवीन आदर्श रखने में सफल हुए थे। इन्होंने हर एक विभाग में एक नवीनता, एक काया-पलट कर दी थी। यह बहुत आश्चर्य किन्तु विशेष ध्यान देने योग्य जादू जैसी बात है कि कुछ ही साल पहिले जो लोग कि सामाजिक दास समझे जाते थे वही आज शासक हैं। न्याय, समता और स्वाधीनता पर स्थापित समाज अन्वेषकों के लिये वास्तव में यह एकमत अतीव साहस पूर्ण कार्य था। लोगों ने इस श्रमसाध्य कार्य्य को स्वयं ही उठाया और अपने बल पर इसे सफल और दृढ़ करने में समर्थ हुए। जहाँ किसी समय स्वेच्छाचारी ज़ार का निरंकुश सैनिक राज्य था, वहाँ आज सर्वसाधारण की पंचायतें हैं जो कि प्रजा की सच्ची प्रतिनिधिक सरकार की भाँति प्रजा हित के लिये शासन करती है।

———



तृतीय अध्याय

रूस

मास्को के लिये प्रस्थान

तुर्किस्तान में समाज की विभिन्न दशाओं का अध्ययन कर के, मैं अपने चार भारतीय वन्धुओं के साथ मास्को की ओर चल पड़ा। ताशक़न्द से मास्को तक जाने वाली ट्रेन बहुत ही आरामदेह ट्रेन थी। रेल के डव्बे भारत की अपेक्षा वड़े और अधिक अच्छे थे। इञ्जन एक विशालकाय हाथी की तरह मालूम होता था। यह भारत के नार्थ वेस्टर्न रेलवे से डेढ़ गुणा अधिक लम्बा चौड़ा था। यहाँ की रेलों में फर्स्ट, सेकण्ड की भांति कोई दर्जा नहीं होता। यदि कोई अन्तर होता है तो यही कि पहिली श्रेणी की गाड़ियाँ कुछ मुलायम होती हैं और लम्वी यात्रा के लिये होती हैं तथा दूसरी श्रेणी की पहले से कुछ खराव--कड़ी--होती हैं। जिन में थोड़ी दूर यात्रा कर ने वाले चढ़ते हैं। पर इस दूसरी श्रेणी की गाड़ियों में भी सोने के स्थान वने रहते हैं। दूसरे दिन हम लोग औरेन्वर्ग नामक उस स्थान पर पहुँचे, जो पूर्व देशों को पश्चिमी देशों से अलग करता है। यह यूराल नदी के तट पर है। पुल की एक ओर वड़े वड़े अक्षरों में "एशिया" और दूसरी ओर "यूरोप" लिखा हुआ है। हम लोग समारा से गुज़रते हुए जो कि रास्ते में पड़ता था, दूसरे दिन प्रातःकाल मास्को पहुँच गये।

ट्रेन पर से पहली झलक में ही मास्को की आकर्षक और शाही शोभा आभासित हो जाती है। इस की तुलना वम्बई, कल-

कत्ता, दिल्ली से नहीं की जा सकती। यह बहुत ही वैभवशाली, बहुत ही आकर्षक और बहुत ही सुन्दर नगर है। बड़ी बड़ी मीनारों, रंग विरंगी-अट्टालिकाओं और आलीशान बुर्जों से सम्पन्न यह एक स्वप्न---स्थली सा मालूम पड़ता है। ज्यों ज्यों उस के समीप जाते हैं, वैसे ही वैसे वह और भी सुहावना और मनोरम दीखता है। मास्को की उपमा पृथ्वी के किसी नगर से नहीं दी जा सकती, वह अनुपमेय है। इसे न पूर्वी नगर कहा जा सकता है और न पश्चिमी ही। यह सुनहले बुर्जों वाले सुन्दर गिर्जाघरों और ऐतिहासिक इमारतों से शोभायमान अत्यन्त सुन्दर नगर है, जिस पर प्राच्य और पाश्चात्य दोनों की अनोखी छाप है।

होटल-लक्स

हम लोगों की ट्रेन मास्कों के अलेक्ज़ेन्डर वस्कीवागाज़ाल नाम के बहुत ही आलीशान स्टेशन पर ठहरी। मोटरें हम लोगों की प्रतीक्षा कर रही थीं। अतः हम लोग उस पर बैठ कर होटल डी लक्सेज़ पहुँचे। होटल ट्वरस्कया स्ट्रीट के एक नौमञ्ज़िले अट्टालिका में है। यह होटल समस्त देशों के श्रमजीवियों के प्रतिनिधियों के ठहरने का प्रधान स्थान है। चीनी, जापानी, हिन्दोस्तानी, तुर्की आदि से ले कर अँग्रेज़, फ्रेञ्च, जर्मन, इटालियन, अमेरिकन तक सभी इस में ठहरते हैं ज़ीनोविव सप्ताह में कम से कम एक वार अवश्य यहाँ घूम जाते थे। टामस्कि, क्यूबी और हर्ज़ीरमन रक्कोई (जो आज कल हंगरी के जेल में हैं तथा हंगरी के भूतपूर्व सभापति बेलाकीन यहाँ स्थायी रूप से रहते थे। कार्ल इडक सप्ताह में दो वार और अनवरपाशा दिन में तीन वार यहाँ घूम फिर जाते थे; मानो उन्हें और कोई कार्य्य ही न हो। यह एक अत्यन्त

मनोरम और आकर्षक स्थान था। सारा संसार एक इस होटल में बसा हुआ था। समय समय पर यहाँ ख़ूब गरमा-गरम बहस हुआ करती थी। यह मकान भी ख़ूब आलीशान था और इस ज़माने की सभी पश्चिमी सामग्रियों से भरापूरा था। प्रत्येक कमरे में टेलीफ़ोन और बिजली की घड़ियाँ लगी हुई थीं। श्रमजीवियों के प्रतिनिधि जिन्हें अपने देश में कठिन सज़ाएँ और तरह तरह की यातनाएँ दी गई थीं, यहाँ राजाओं का सा जीवन व्यतीत कर रहे थे। उन्हें अच्छी विश्रान्ति मिल जाती थी। वे यहाँ से लौट कर जब अपने देश के दुःखमय वायु-मण्डल में जाते, तो यहाँ से श्रमजीवियों के उद्धार कार्य्य में अपने को लगाने के लिये यहाँ से नवीन उत्साह ले जाते थे। इसी उत्साह के बल वे लड़ाइयों को चलाते थे। इसी उत्साह और प्रकाश के सहारे वे अपने देश के किसानों और मज़दूरों को मार्ग प्रदर्शन करते थे।

मास्को नगर

मास्को नगर में कुल १२०० गिर्ज़ाघर हैं। युद्ध और क्रान्ति ने इन्हें ज़रा भी हानि नहीं पहुँचाई। श्वेत, नीली, सुनहली और संगमरमर की गगनचुम्बी मीनारें ऊँची से ऊँची अट्टालिकाओं से भी ऊपर मस्तक उठाये खड़ी हैं। यहाँ सबों को पूरी धार्मिक स्वतन्त्रता है। आज कल दुनिया में धार्मिक सज़ाओं की जो खबरें फैलाई जारही हैं उन में केवल उन धार्मिक नेताओं को दण्ड दिया जाता है, जो कि खुले या गुप्त रूप से श्रमजीवी और कृषक प्रजातन्त्र के विरुद्ध षड्यन्त्र रचते हैं। और इसी में नमक मिर्च मिला कर साम्राज्यवादी सम्वाददाता रूस के विरुद्ध बातों का प्रचार करते हैं।

गिर्जाघरों के पड़ोस में मोस्कवा नदी पर ऐतिहासिक

क्रेमलिन हैं। यहाँ पर नगर के चारों तरफ़ बहुत सी नाट्य-शालाएँ बनी हुई हैं। क्रेमलिन के सामने ही कोमिनटर्न नामक, जगत के श्रमजीवियों का प्रसिद्ध महल है। इस के विशाल द्वार पर मोटे मोटे अक्षरों में लिखा हुआ है कि 'संसार के श्रम--जीविओ, एक हो जाओ। तुम्हारे पास खाने के लिये तुम्हारी बड़ियों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है और प्राप्त करने के लिये सारा संसार है।' कोमिनटर्न से कुछ ही दूरी पर "बेला गिर्जा" नाम की ताजमहल जैसी एक इमारत है। यह ऐसी सुन्दर संगमरमर की बनी हुई है, कि इधर उधर बरफ़ पड़ी होने का भ्रम होता है। यह रूसी गृह--निर्माण कला का बड़ा सुन्दर नमूना है। क्रेमलीन में रहस्यमय टिउटनिक कला की छटा दिखाई देती है पर आधुनिक रूसी कला के विकास स्वरूप यह प्रासाद बना है। इस के पास ही और ट्वरस्कया स्ट्रीट से कुछ दूर पर यहाँ का बहुत बड़ा ट्रेडयूनियन हाल (मज़दूर भवन) है। क्रान्ति के पहिले यह सुन्दर अट्टालिका "नोबल्स" (रईसों) का क्लब था, जहाँ बड़े बड़े धनी और अमीर लोग जूआ खेलते और मनमानी रंगरेलियाँ मचाते थे। यहाँ समस्त रूस की ट्रेड-यूनियन काँग्रेस का प्रति वर्ष एक बड़ा अधिवेशन होता है और स्थानीय तथा प्रान्तीय कांग्रेस संस्थायें जब चाहती हैं तब अपनी बैठक इस में करती हैं। इस हाल में छः हज़ार मनुष्य बड़ी सरलता से बैठ सकते हैं। थोड़ी ही दूर पर राष्ट्र सम्बन्धी सेना को रसद आदि सामान पहुँचाने के विभाग के ठीक सामने इतिहास--प्रसिद्ध बोलशेविया थियेटर नाम का बहुत बड़ा अभिनय--गृह है, जो संसार के सब से बड़े थियेटरों में से एक है। पहले यह ज़ार का थियेटर था, जहाँ अमीर उमरावों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों का जाना सर्वथा मना था। जिस सिंहासन पर बैठ कर ज़ार अभिनय देखा करता था, अब उस

पर मज़दूर या विदेशों के मुख्य प्रतिनिधि बैठा करते हैं। सारा थियेटर भीतर से ख़ूब चमचमाता है। इसमें इतनी सुन्दर कारीगरी की गई है, कि उसे देख कर सहज ही ईर्षा होती है। वह व्यक्ति जिसे इस थियेटर की बाबत पहिले से कुछ ज्ञान नहीं है, पहली बार इसे देख कर निश्चय ही कह उठेगा कि यह सारा सोने का बना हुआ है। पर वास्तव में यह क़लई किया हुआ है। थियेटर के चारों तरफ़ विविध प्रकार की सुन्दर चित्रकारियों से चित्रित सफ़ेद सफ़ेद खम्भे लगे हुए हैं। मास्को में मेरे दोनों बार ठहरने के समय इस थियेटर में विख्यात शालपाइ अभिनय कर रहे थे। उन के खेलों का मुझ पर जो प्रभाव पड़ा, उसे प्रकट करना बड़ा ही कठिन है। वे जगतविख्यात अभिनेता हैं। उन की नाट्यकला की आलोचना करना मेरे लिये व्यर्थ है। केवल कोई कवि या चित्रकार ही उन की नाट्यकला के महत्व का अनुभव कर सकता है। क्रान्ति ने थियेटर और सिनेमाओं में नवीन शक्ति और जीवन की धारा प्रवाहित कर दी है। चारों तरफ़ नवीन उत्साह, जीवित जोश और जागृत जीवन है। पुरानी बातें स्वप्न हो गईं ! क्रान्ति तुम्हारी सर्वदा अमर विजय हो !

मास्को का विश्वविद्यालय

मास्को जो कभी विलासिता का अड्डा था अब विश्वविद्यालयों का केन्द्र है। शिल्प विज्ञान, तथा अन्य विषयों में सबों को बिना किसी भेदभाव के शिक्षा दी जाती है। सारे जगत के विशेषतः प्राच्य देशों के छात्र बहुत बड़ी संख्या में यहाँ शिक्षा पाते हैं। कोरिया, भारतवर्ष, फ़ारस आदि जगहों के छात्र अच्छी संख्या में हैं। चीनी छात्रों की संख्या सब से अधिक है। विदेशी छात्रों में ९० प्रतिशत चीनी थे। यहाँ के

विद्यार्थी निर्धन हैं उन्हें मज़दूर-संघों से सहायता दी जाती है। सोवियट शिक्षा-प्रणाली का यह क़ायदा है कि स्कूल और कालेज के विद्यार्थियों की सारी आवश्यकताएँ अवश्य पूरी की जानी चाहिये।

लाल सेना

सोवियट रूस के मुख्य अंगों में विश्वविद्यालय के बाद उस की लाल सेना का संगठन है। १९१७ ई० की मार्च की क्रान्ति के बाद बोलशेविकों को क्रोसनीगार्ड (लाल रिक्षकों) की आवश्यकता प्रतीत हुई। पहली क्रान्ति के बाद राजशक्ति 'मेनशामिकों' के हाथ में चली जाने के कारण इस प्रकार कार्य्य करना अनिवार्य्य हो गया। यह संगठन मार्च मास में आरम्भ किया गया। किन्तु जुलाई में करन्स्की की सरकार द्वारा ग़ैर क़ानूनी कर देने के बाद सारा कार्य्य गुप्त रूप से होने लगा। कज़्ज़ाक सेनापति कोर्निलाव को इस संगठन को, आरम्भ में ही नष्ट कर देने के लिये पूर्ण अधिकार दे दिया गया था। इस व्यक्ति ने सर्व्वप्रथम सेना में प्राणदण्ड देना आरम्भ किया। परमात्मा और अल्लाह के नाम पर इस ने मुसलमान और क़ज़्ज़ाक़ सैनिकों से नास्तिक बोलशेविकों को गोली मार देने की अपील की। सात हज़ार पुराने बहादुर सिपाही फौरन मोर्चे पर से बुला लिये गये। किन्तु विजय, अन्त में सोवियट और क्रान्ति-पक्ष की ही रही। साम्यवादी मुसलमानों ने 'इनक़िलाब' के नाम पर अपने भाइयों को अपने देश और जनता के शत्रुओं का सामना करने का उपदेश दिया। फलस्वरूप, विना एक भी फ़ायर किये कोर्निलोव को वापस लौटना पड़ा।

लाल—रक्षक पुनः वैध घोषित किये गये और दूसरी क्रान्ति के अनन्तर लाल सेना के नाम से जनता की स्थायी सेना स्था-

पित करली गई। २२ फ़रवरी १९१८ को एक घोषणा प्रकाशित हुई जो इस प्रकार है:—

कृषक और मज़दूरों की लालसेना बहुत ही बुद्धिमान और सङ्गठित श्रमिक-सम्प्रदाय से बनाई जायगी। निकट भविष्य में यूरोप की भावी सामाजिक क्रान्ति की रक्षा करने के लिये स्थली सेना की जगह पर यह नयी सेना एक आदर्श होगी। १९२१ की जनवरी में कुल लाल सेना की संख्या ५३,००,००० थी। रूस में सर्वत्र सैनिक विद्यालय और महा-विद्यालय हैं। भविष्य में आक्रमणों का भय मिट जाने के कारण यहाँ की सेना यद्यपि बहुत कम कर दी गई है पर कार्य्य कुशलता में सिपाही पहले से अधिक बढ़े-चढ़े हैं। सैनिक अफसरों को शिक्षा देने के स्कूल तीन भागों में विभक्त हैं:—

[१] साधारण विद्यालय जहाँ तीन वर्ष का कोर्स होता है।

[२] विशेष शिक्षा के स्कूल और स्टाफ कालेज।

[३] सेना के प्रधान अफ़सरों के स्कूल।

इन लोगों को केवल सैनिक शिक्षा ही नहीं दी जाती, वरन् साथ ही साधारण और राजनीतिक शिक्षा भी पर्य्याप्त-रूप से दी जाती है।

लाल सेना के सैनिक यह अच्छी तरह समझते हैं कि वे जन-साधारण-जिन में वह स्वयं भी हैं—के स्वत्वों के संरक्षक हैं और विदेशियों के सशस्त्र आक्रमणों से अपने देश की रक्षा करना उन का फ़र्ज़ है। सब से मुख्य बात यह है कि जैसे विश्व-विद्यालयों में छात्र और शिक्षकों में ऊँच नीच का कोई भी भेद नहीं है वैसे ही यहाँ की सेना में भी सिपाही और अफ़सरों में कोई अन्तर नहीं। किन्तु इस का यह अर्थ भी नहीं कि उन में

विश्वविद्यालय के विषय में अधिक बातें जानने के अभिप्राय से मैं भाई लुमाचरस्की के पास गया जो बड़े ही मिलनसार व्यक्ति हैं और अपना कार्य्य बड़ी दिलचस्पी से करते हैं। ये शेक्स-पियर, ट्रॉटस्की और डेन्टन की भाँति सम्पत्तिवादी नहीं बल्कि जिनोवीव की भाँति बहुत ही नम्र सज्जन थे। उन्हों ने मेरा बड़े शिष्टाचार से स्वागत किया और सोविएट शासन पर पूर्ण--तया प्रकाश डालने की कृपा की। उन से मुझे मालूम हुआ कि विश्वविद्यालय दो विभागों में विभाजित है। उच्च श्रेणी और निम्न श्रेणी। ऊँची श्रेणियों में वे छात्र लिये जाते हैं, जिन्हों ने अर्थ शास्त्र तथा कला-कौशल लिया हो। कलाओं में इंजीनिय--रिंग की सभी शाखाएँ गिनी जाती हैं। नीची व साधारण श्रेणी में विविध विषयों की शिक्षा का प्रबन्ध है जैसेः— चिकित्सा, कला--कौशल, विज्ञान, क़ानून, संगीत इत्यादि इस के साथ एक विभाग और भी है जो कि रडफ़क या रोवोची विभाग (श्रमिक विभाग) कहलाता है। इन का व्यवसायिक केन्द्रों से घनिष्ट सम्बन्ध है। इन का सञ्चालन शिल्पकार मज़दूरों की देख-रेख में होता है और उन अभागे मज़दूरों को इस में स्थान मिलता है जो ज़ारशाही में स्कूल की काफी शिक्षा न पा सके थे। यहाँ खनिक और कृषि विद्यालय भी हैं, जिन का सञ्चालन भी विश्वविद्यालयों की उपरोक्त प्रणाली पर किया जाता है। अभिनय तथा नृत्य विद्यालयों में किसी भी सामान की कमी नहीं है। इस के सिवा बच्चों और लड़कों की व्यावहारिक शिक्षा के लिये किन्डरगार्टन पद्धति के अनुसार शिक्षा दी जाने का भी प्रबन्ध है। उपरोक्त बातें समाप्त करते हुए भाई लुमाचरस्की ने कहा,—'भाई, भूतकालीन रूस में शिक्षा का अन्धकार होने के कारण, हम अपनी सोवियट को एकाएक शिक्षा-[illegible] बनाने में समर्थ नहीं हैं। इस कार्य्य को पूर्ण करने में कितने ही वर्ष

लग जायँगे। अभी तो केवल आरम्भमात्र हुआ है। यदि क्रान्ति जीवित रही तो एक दिन संसार के सामने हम एक अद्वितीय शिक्षा-प्रणाली रखने में समर्थ होंगे।✽

विद्यार्थी-वर्ग

छात्रों के सम्बन्ध में उन से और अपने अनुभव से यह मालूम हुआ कि यहाँ शिक्षक और छात्रों के बीच कोई भेद-भाव नहीं है। वे आपस में बराबरी और मित्रता का व्यवहार करते हैं। क्रान्ति ने शिक्षा-प्रणाली में काया-पलट कर दिया है। इस के द्वारा मनोवैज्ञानिक परिवर्तन आगया है। एक दिन मैं कुछ विद्यार्थियों के साथ घूम रहा था, कि एक बूढ़े आदमी ने हम लोगों को सलाम किया। उस के आगे बढ़ जाते ही तमाम विद्यार्थी खिलखिला कर हँसने लगे। मुझे इस खिलखिलाहट का कोई कारण ज्ञात न था इसलिये मैं उन की हँसी में योग न दे सका। उन्हों ने मेरे इस भाव को भांप लिया और कहने लगे कि 'भाई, यह बूढ़ा आदमी जिस ने अभी हम लोगों को सलाम किया हम लोगों का शिक्षक है। अरे बापरे! क्रान्ति के पहले यह बहुत ही सख़्त और निर्दयी शिक्षक था। हम लोग इस से बहुत डरते थे। यदि संयोगवश कभी कोई शिष्य मार्ग में उन्हें सलाम नहीं करता, तो दूसरे दिन क्लास में उस के ऊपर सारा गुस्सा उतारा जाता था। कितना परिवर्तन हो गया है। आदमी वही है पर उस के स्वभाव में इतना परिवर्तन हो गया है। जो

✽ पारसाल (१९२७ ई० में) सोवियट प्रजातन्त्र का दशम वार्षिकोत्सव मनायागया था। उस के विवरणों से ज्ञात होता है कि इन दस वर्षों में रूस ने शिक्षा-प्रचार में आश्चर्यजनक उन्नति की है, और वह इस दिशा में इतने ज़ोरों से काम कर रहा है कि कुछ ही दिनों बाद वहाँ एक भी निरक्षर व्यक्ति नहीं मिलेगा।

अनवरपाशा से भेंट

एक दिन जब मैं कमसरियट के पास घूम रहा था, मुझे मालूम हुआ कि अनवरपाशा जर्मनी से शीघ्र ही लौटे हैं। उस समय भारत के सारे मुसलमान उन को प्यार करते थे। रूसी लोग उन को पूर्वी मूर्ति कहा करते थे। मैं ने उन का पता लगाना चाहा कि उन से जाकर मिलूँ, परन्तु ऐसे लोगों की वहाँ क्या गिनती है! उन से अधिक तो वहाँ, मज़दूर-नेता प्रसिद्ध हैं। बड़ी पूछताछ के बाद पता चला कि वे विदेशी कर्मचारियों के मकान में रहते हैं। जब तक पूर्ण रूप से जाँच नहीं हो लेती थी और लोगों को उस व्यक्ति पर विश्वास नहीं हो जाता था, उधर कोई बढ़ने नहीं पाता था। मैंने अपना कार्ड दिया। पर उस का विश्वास नहीं हुआ। उन्हों ने होटल से टेलीफोन द्वारा पूछा और तब मुझे अन्दर जाने की आज्ञा दी गई। मै एक सुन्दर कमरे में बैठाया गया। एक मनुष्य मेरा कार्ड पाशा के पास ले गया। अनवर में तुर्की पाशाओं की तरह नज़ाकत अथवा घमण्ड का नाम मात्र भी न था। वह कार्ड पाते ही सीधे झट से मेरे पास चले आये और मुझ से हाथ मिलाया। वहाँ से वे मुझे अपने कमरे में ले गये। हम लोग अग्नि के निकट ही बैठे। अनवर फौजी बाना पहने हुए थे। फुर्ती, वीरता और कार्य पटुता उन के चेहरे ही से टपक रही थीं। यद्यपि गत लड़ाई के लिये वे भी बहुत ज़िम्मेदार समझे जाते थे, पर तो भी सोवियट सरकार उन को कारारवान या क़ासीन से अधिक सम्मान करती थी। उन के चारों ओर आमोद-प्रमोद था। सुख वैभव के सामान मौजूद थे। पर रुपये न थे, और न तो रुपये की ज़रूरत ही थी। क्यों कि वहाँ कोई चीज़ कोई मनुष्य बिना सरकारी आज्ञा के नहीं ख़रीद सकता है। और जब सरकारी आज्ञा मिलती है, तो रुपये की आवश्यकता नहीं होती। अनवर भारतीय स्थिति के सम्बन्ध में कुछ जानना

चाहते थे। उस पर वे आलोचना करना चाहते थे। मेरी इन पर बड़ी श्रद्धा थी, मैं इनकी फ़ोटो की बहुत दिनों से पूजा किया करता था। आज साक्षात उस व्यक्ति का दर्शन हो गया। चाहे यह भावुकता ही क्यों न हो, मैं उस समय अलवर और नेपोलियन ऐसे वीरों के प्रति बड़ी श्रद्धा रखता था। पर अब तो ऐसे महत्वाकांक्षी ताना शाहों को दूर ही से प्रणाम है। हम लोगों ने अंग्रेजी में बातें करनी शुरू की। उन्हों ने देशबन्धु दास और मि० राय की बड़ी प्रशंसा की। मौ० महम्मद अली के भयङ्कर परिवर्तन की बड़ी निन्दा की। लाला जी के बारे में उन्हों ने पूछा (उस समय वह साम्प्रदायिक झगड़े में नहीं पड़े थे) मैं ने उन के विचार उन के सामने रख दिये। इस के पश्चात उन्हों ने डाक्टर अन्सारी और उन के बलकान—युद्ध सम्बन्धी मिशन की चर्चा की। मुसलमानों में उन्हों ने डाक्टर अन्सारी तथा शौकतअली की प्रशंसा की। मैंने उन से कहा कि भारतीय मुसलमान आपको मूर्ति की भांति पूजते हैं। इस पर तो वह खूब हँसे और कहने लगे कि जो लोग किसी की भी पूजा करते हैं, उन से मुझे घृणा है; परन्तु जो स्वतंत्रता के लिये लड़ते हैं, उन से मुझे बड़ा प्रेम है। रही मेरे अपने सम्बन्ध की बात, सो मैं ने अभी तो कुछ किया नहीं है, हाँ, अब, ज़रूर कुछ करूँगा।' इस के बाद मैं ने सुलतान अब्दुल हामिद की चर्चा की। वह दृढ़ता पूर्वक कहने लगे कि मैंने अवश्य उन को राज्यच्युत किया है और देश के बंधन को तोड़ा है। फिर मैंने एड्रियानोपिल और महायुद्ध की बात छेड़ी। वे कहने लगे—मित्रवर, मैं एड्रियानोपिल और ट्रिपोली का हर प्रकार से ऋणी हूं। उन लोगों ने मुझे अपना सिपाही बनाया। परन्तु लड़ाई असफल रही। हाँ, यदि दूसरी लड़ाई फिर हो, तो मैं उसे सफल करूँगा। पर खेद की बात है कि इस के पहले वे इस संसार से चल बसे। इस के पश्चात मैं ने डाइनिलीज़

अनुशासन की कमी है। काम के वक्त वे परम अनुशासित और सख़्त पर छुट्टी के समय वे परस्पर भाई की तरह मिलते हैं।

क्रान्स्टाड विद्रोह

फ़रवरी १९२१ में नाविकों ने जहाज़ पर खुल्लमखुल्ला विप्लव मचा दिया। मध्यम श्रेणी के लोगों ने भी उस में भाग लिया। फ्रान्स ने हम लोगों के मार्ग में बहुतेरी अड़चने डालीं। अनेक विप्लव योजनायें भी हमारे विरुद्ध की गईं। ज़ार के समय के सेनापति तथा नायक जो इटली तथा फ्रान्स में जाकर छिपे थे विप्लवों को संगठित करने के लिए भेजे गये। अभी हम लोगों की यह पहली मुठभेड़ थी। परन्तु यह बढ़ भी न पाया था कि क्रांसिनी सेना ने इसे वहीं दबा दिया। यद्यपि लाल सेना के पास न काफ़ी सामान ही था और न उसे पूर्ण शिक्षा ही मिली थी, तथापि उन लोगों ने अचानक जा पछाड़ा। ठण्ड से बर्फ़ बने बाल्टिक सागर पर वाशिंगटन के सैनिकों की भांति नंगे पाँव चलकर शत्रु को विस्मित कर देना कुछ कम वीरता का काम न था, उन के साहस का अनुभव इसी से हो सकता है। जिस प्रकार अमेरिका निवासी वाशिंगटन की सेना की वीरता को आज याद करते हैं, ठीक उसी भांति रूसी लोग भी इन वीरों की याद किया करेंगे जो कि आपत्ति के समय में अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये जमे हुए बाल्टिक में नंगे चलने से भी नहीं हिचके।

साम्राज्यवादी पत्रों की चाल

हमें बहुत से प्रमाण मिलते हैं, जिन से यह पता चलता है कि इस क्रांस्टाड के विप्लव में पश्चिमी साम्राज्यवादियों का पूरा हाथ था। उन्हों ने पूरी सहायता दी थी। अभी तो यह आरम्भ ही था। बड़े आनन्द की बात तो यह है कि 'क्रेमलिन'

जहाँ का तहाँ था। हम मास्को में थे। वहां पूरी शान्ति थी। किसी प्रकार की गड़बड़ी नहीं हुई। लेनिन भी सुरक्षित थे। पर लन्दन के "टाइम्स" तथा अनेक पत्रों ने लिखा कि "क्रेमलिन" जला दिया गया। मास्को में विप्लवियों का शासन है। इतना ही नहीं वल्कि उन्हों ने यह भी लिखा कि "लेनिन मार डाला गया।" इन वातों को देख कर हम लोग खूब हँसा करते थे। साम्राज्यवादी वड़ी उत्सुकता से सोवियट शासन का पतन देखने के इच्छुक थे, परन्तु उन का स्वयं पतन हो गया।

शहीद क्रोपाटकिन

७ फ़रवरी १९२१ को संसार-प्रसिद्ध महान पिटर क्रोपाटकिन का स्वर्गवास हुआ। उन्हों ने क्रान्तिदेवी की जो आराधना की थी उस की सभी प्रशंसा कर रहे थे। चारों ओर उन का गुण गान हो रहा था। इन्हों ने रूस की साहित्योन्नति में भी बड़ा योग दिया था। काले झण्डे उड़ाये गये। विप्लव का चित्र क़ब्र पर लगाया गया। उस शहीद का सभी ने आदर किया। लेनिन ने शोक प्रकट किया। अन्य देशीय प्रतिनिधि इत्यादि सभी एकत्रित हुए। सबों ने मिल कर शोक मनाया। ट्राटस्की तथा जिनोविव-रो रहे थे। मज़दूरों से लेकर नेता तक सब लोग एकत्रित हुए। यद्यपि सर्दी अधिक थी पर भीड़ इतनी अधिक थी कि लोगों को पसीना आने लगा। १ बजे शव श्मशान के लिये चला। चारों ओर शोक छाया हुआ था। वाजों की एक एक ध्वनि से शोक की आह निकलती थी और अन्तर-राष्ट्रीय गीत विलाप संगीत सा हो रहा था। अन्त में सबों को शोकाकुल छोड़ कर क्रोपाटकिन अनन्त शान्ति की गोद में सुला दिये गये। वह वीरात्मा इस संसार से चला गया। पर उस की अमर कीर्ति आज भी संसार को अमर, दिव्य संदेश सुना रही है।

और इन लोगों से हाथ मिलाने के पहले उन्हों ने नौकरों को छाती से लगाया; फिर इन लोगों से हाथ मिलाया। उन्हों ने बतलाया कि सोवियट सरकार के यहाँ उच्च-नीच का कोई सामाजिक भेद-भाव नहीं है। इस पर उन लोगों ने क्षमा माँगी।

इस के पश्चात् हम लोग क्रेमलिन के शाही कमरों तथा ज़ार के निजी निवास स्थान में गये। परन्तु यहाँ हम लोगों ने कुछ अधिक आमोद-प्रमोद न देखा। बीकानेर का राजमहल या अकबर का दीवाने-आम इस से अधिक अच्छा है। उस बड़े से हाल में जिस में ज़ार के ज़माने में नाच-गाने आदि होते थे, इन दिनों सोवियट रूस की काँग्रेस के अधिवेशन होते हैं। यहां से हो कर हम लोग कार्लरैडेक से मिले। वे बड़े ही सज्जन, हँसमुख और सरल प्रकृति के व्यक्ति हैं। वे आस्ट्रिया के रहने वाले हैं। पर अब यहीं बस गये हैं। लड़ाई में अपने कार्य्यों के कारण बहुत विख्यात हो गये। उन्हीं का यह काम था कि सन १९१७ में पूर्वी किनारों पर जर्मन फ़ौजों का ज़ोर कम रहा। इन के यहाँ से हम लोग एक ऐतिहासिक कमरे में गये। नेपोलियन यहीं एक रात को सोया था। वह चारपाई जिस पर वह सोया था अब तक सुरक्षित रक्खी है। साथ ही उस कमरे के उस समय की और सभी वस्तुएँ भी वैसी ही सुरक्षित हैं।

कोलोमा के कारखाने

दूसरे दिन हम लोग कोलोमा कारख़ाने को चले। यह मास्को से लगभग ६० मील पर स्थित है। संध्या समय हम लोग तुर्की प्रतिनिधियों के साथ रवाना हुए। उन में प्रमुख अलीफुआद थे। वे आज कल कमालपाशा के यहाँ हैं। मैं कुछ तुर्की भाषा जानता था, इसलिये तुर्की ही में बात करना शुरू

किया। उन्हों ने भारत के सम्बन्ध में कई प्रश्न किये। उन्हों ने यथाशक्ति नैतिक सहायता देने का भी वचन दिया। इस के पश्चात् उन्हों ने भारतीय सेना और उस के भाड़े के टट्टू के जैसे करने वाले कार्य्यों की भी निन्दा की। मुझे दुःख तो हुआ परन्तु, मैं ने अपने लोगों की लाचारी भी बतला दी। मैं ने कहा कि हम लोगों की इच्छा न रहते हुए भी अँग्रेज़ प्रभुओं ने हमें फ़ौजों में भेज कर हम लोगों से अनीति कराई है। प्रातःकाल चाय पानी के पश्चात् हम सब भ्रमण के लिये निकले। हमारे दल में, तुर्क, फ्रान्सीसी, जर्मन, अँग्रेज़, रोमन आदि अनेक जातियों के लोग थे। सोवियट प्रतिनिधि वहाँ पहले ही से हम लोगों के स्वागत के लिये तैयार थे। सेना में राष्ट्रीय गान हो रहे थे। हम लोगों को वहाँ विधिवत् बधाइयाँ दी गईं। भोजन तथा विश्राम के पश्चात हम लोग कारख़ाने को चले। यहां इंजिनें, मोटर आदि बनाने का काम बड़े ज़ोरों से हो रहा था। वहाँ के लोगों ने बतलाया, "क्रांति के बाद से कार्य्य में ३३ प्रति शत उन्नति हुई है। लड़ाई के कारण काम बहुत मन्दा पड़ गया था। परन्तु सोवियट सरकार का क़ब्ज़ा हो जाने से सभी जगह उन्नति हो रही है। दस ही मास के अन्तर ४४ प्रति शत उन्नति हो गई। निस्संदेह यह एक बड़ी उन्नति है।" पश्चात हम लोग ढलाई का काम देखने गये। अँग्रेज़ और जर्मन प्रतिनिधियों ने कहा "यदि सोवियट सरकार सुरक्षित रहेगी, तो वह जर्मन और फ्रान्स के कारख़ानों को भी नीचा दिखावेगी।" इन कामों को देख कर यही अनुमान हुआ कि सोवियट सरकार में एक विलक्षण शक्ति है, जिस के दृष्टान्त-स्वरूप उस ने अल्पकाल ही में अद्भुत उन्नति दिखलाई है।

की रक्षा के सम्बन्ध में पूँछा। उन्हों ने कहा "उस लड़ाई का मैं ही मुख्य पात्र हूँ। यह मेरा ही कार्य्य है जिस ने मित्र राष्ट्रों के छक्के छुड़ा दिये। हम लोगों की बैटरियाँ (तोपें) बड़ी ऊँचाई पर थीं। उस पर निशाना लगाना महा कठिन था। ज़रा सोचो तो, ४००० गोले छोड़े गये, परन्तु कोई हानि नहीं हुई। उन लोगों का केवल समुद्री मार्ग से हमला करना उन्हीं के लिये आपत्ति-जनक था। उस का पता तो इसी से चल सकता है कि हम लोगों ने तीन बड़े बड़े जहाज़ों को डुबो दिया, पर कुछ समय न लगा। कुछ खराव हुए और वहुत से बेकार हो गये। मित्र राष्ट्र निराश हो कर लौट गये। हम लोग विभिन्न स्थानों से निशाना लगाते थे। और धुआँ भी भिन्न भिन्न स्थानों से उठता था। जिस के कारण वे लोग और भी घवड़ा जाते कि किस स्थान पर हमला करें। बैटरियों से एक मील की दूरी पर हम लोगों ने वारूद फैला रखी थी और उन में पलीते लगा कर खाइयों तक जोड़ दिया था। वार वार निशाने के लिये संकेत किया जाता था, वारूद और बैटरियों से धुआँ निकल कर आकाश में छा जाता। इस कारण विचारे शत्रु और भी घवड़ा जाते थे कि गोलेवारी ही हो रही है। यही कारण है कि हम लोगों की जीत रही।

जब अब्दुल रब मास्को आये तो अनवर उनसे रोज मिलने जाया करते थे। भारत लौटने के पहले मैं कई वार उन से फिर मिला। उन की मृत्यु पर मुझे सब से अधिक दुःख हुआ। पर इस बात को जान कर मुझे उन पर बड़ा तरस आया कि उन्हों ने सोवियट-आतिथ्य का दुरुपयोग किया। अन्य विदेशी प्रतिनिधियों के संग मैं भी क्रैमलीन देखने गया। क्रैमलिन भारतीय क़िलों की भांति एक ऐतिहासिक महल है, जहाँ रूस की विभिन्न कला कौशल की वस्तुएं संगृहीत हैं।

जब हम लोगों की पूरी शिनाख़्त हो गई, तो अन्दर जाने को मिला। उन दिनों क्रेमलिन बड़ा प्रसिद्ध स्थान था। लेनिन, ट्राटस्की, कैनोव, रैडक स्टॉलिन आदि सभी वहाँ रहते थे। उन लोगों के भिन्न भिन्न विभाग थे। पहले हम लोग लेनिन के कमरे में लाये गये। यह एक साधारण सी कोठरी थी। इस में चन्द छोटे-मोटे डेस्क और मेज़ें थीं। नक़शे दीवालों में लटक रहे थे। कई आलमारियों में पुस्तकें रक्खी हुई थीं। कमरे भर में केवल एक ही 'कार्ल मार्क्स' की फोटो दिखाई पड़ी। लेनिन के कमरे से ही पता चलता था कि उन्हें आमोद-प्रमोद अथवा सुख विलास की इच्छा नहीं थी। उन के त्यागमय जीवन का केवल इतने से अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि एक बार अकाल के समय कुछ लोग उन के पास दो वर्ष तक के लिये दस व्यक्तियों के कुटुम्ब के लायक़ पर्याप्त भोजन-सामग्री ले आये। उन्हों ने उस में से केवल एक दिन के लायक भोजन ले कर, शेष मज़दूरों को बँटवा दिया। इसी प्रकार के कार्यों से जनता उन पर मुग्ध तथा श्रद्धावान हो चुकी थी। स्वयं लेनिन को हम लोग तंग नहीं करना चाहते थे। क्योंकि वह कार्यकर्ताओं के साथ भोजन कर रहे थे। बाद में हम लोग उन से दो बार मिले। जब हम लोग लेनिन के कमरे से गुज़रे तो हमारे दुभाषिये ने राजा महेन्द्र प्रताप, आचार्य, अब्दुलरब, तथा बरकतउल्ला के सम्बन्ध में एक बड़ा रोचक क़िस्सा सुनाया। ये चारों सज्जन जर्मनी से जब रूस आये तो लेनिन से मिलने गये थे। वे जिस प्रकार अधिक समय से, अन्य देशों के बड़े बड़े अफ़सरों से मिलते रहे, वही आदत यहाँ भी बनी हुई थी। वे सब लोग एक पँक्ति बना कर नौकरों को पीछे रखते हुए आगे बढ़े। लेनिन के सामने झुक कर उन लोगों ने प्रणाम किया। लेनिन को यह बहुत नागवार गुज़रा

कहा कि इस घड़ी की आवाज़ को सुन कर मैं विस्मित हो गया हूं। उस ने कहा "अभी क्या यदि १२ बजे आओ तो और भी आश्चर्य-जनक आवाज़ सुनोगे।" अब तो मुझे और भी उत्सुकता हुई। बारह बजे आकर उस अचम्भे को देखना चाहिये, यही धुन मेरे मन में बस गयी। आधी रात के समय भयानक सन्नाटे से गुज़रता हुआ मैं वहाँ पहुँच ही गया। लगभग आध घण्टे तक मधुर राष्ट्रीय गान होता रहा। मुझे रूस में जितना आनन्द इस से मिला, उतना और किसी चीज़ से न मिला। इस अत्यन्त आनन्ददायक संगीत के सामने मैं नाटक और अनेकानेक तमाशों को भूल सा गया। एक स्ले (रूसी गाड़ी) जा रही थी उसी पर चढ़ कर मैं होटल लौटा। मेरा जर्मन मित्र जो उसी गाड़ी से आया, मेरे साहस पर चकित हो रहा था, पर जब मैं ने अपने साहस का कारण बताया तो वह शान्त हुआ। उस रातभर मुझे नींद नहीं आई और ऐसा मालूम होता था। कि मेरे बिछावने की चारों ओर वही गाना गाया जा रहा है। मैं आज भी उसे नहीं भूला हूं।

जेल

सोवियट सरकार के अद्भुत तथा उत्तम गुणों से जेल तक नहीं बच सकी है। वहाँ भी राम-राज्य विराजमान है। जेल का नाम लेना मानो पाप है। वह तो मानो नरक कुण्ड है, परन्तु यदि जेल-ख़ाने नरक कुण्ड हैं, तो भारतीय जेल को न केवल नरक कुण्ड बल्कि महा नरक कुण्ड कहना पड़ेगा। यदि किसी को नरक का दिग्दर्शन करना हो तो वह पेशावर में अपराधियों के जेल में अथवा बरेली के जेल में जावे, जहां जीवित मनुष्यों की खाल बूट जूतों से उतारी जाती है। इन्हीं जेलों में हमारे देश-भक्तों को अनेक प्रकार की यंत्रणाएँ दी जाती हैं, उन के साथ अनेक दुर्व्यवहार किये जाते हैं।

भारतीय जेलों में साढ़े चार वर्ष रह कर मुझे बहुत कुछ अनुभव प्राप्त हुआ है, यहाँ मास्को के जेल को जब याद आती थी, तो आकाश पाताल का अन्तर प्रतीत होता था। भारतीय जेल उच्च आत्माओं को भी नीच बना देती हैं, परन्तु रूसी जेलों से नीच मनुष्य भी उच्च हो कर निकलते हैं। भारतीय जेलों में कैदियों को हिक़ारत की दृष्टि से देखा जाता है, उन्हें बेइज्ज़त किया जाता है, पर रूस में कैदियों को आदर की दृष्टि से देखते और उन्हें चरित्रवान एवं शिक्षित बनाते हैं। यहाँ के जेलों में अज्ञान और मूर्खता का राज्य है, वहाँ ज्ञान तथा जागृति की ज्योति जगमगाती है; यहाँ की जेलों के कैदी बहुत हुआ तो कुछ दस्तकारियाँ सीख पाते हैं, परन्तु वहाँ के जेलों के कैदी समाजोद्धारक और अनेक प्रकार से गुणवान हो कर निकलते हैं। हमारे देश में पाप दण्ड भोगने के लिये लोग भेजे जाते हैं परन्तु वहाँ लोग आदर्श बनने जाते हैं।

यहाँ के जेलों में विभिन्न काम होते हैं। जो जिस काम के योग्य होता है, उस को वही काम दिया जाता है। भोजन तथा कमरे उत्तम और स्वच्छ होते हैं। सब से विचित्र बात तो यह है कि कैदियों को किसी प्रकार की रोक टोक नहीं है वे लोग निर्विघ्न आपस में मिल सकते थे। हम लोगों से भी स्वतंत्रता पूर्वक बातें कर सकते थे। मानों वह जेल नहीं एक कारखाना था। उन लोगों के खेलने के लिये स्थान भी बने हैं जहाँ उन को हर तीसरे दिन खेलने को मिलता है। उन में और साधारण मनुष्यों में अन्तर यही है कि वे जेल की दीवार को छोड़ कर मनमानी जगह पर कहीं नहीं जा सकते। जेल में पुस्तकालय होते हैं और अशिक्षितों को नित्य दो घण्टा पढ़ाया जाता है। वहाँ वार्डर नहीं होते बल्कि निरीक्षक लोग देख भाल करते हैं। कैदी अपने कपड़े और जूते पहन सकते हैं, वहाँ के, जेल के खाना में और साधारण खाना में कोई अन्तर नहीं। लोगों को वही काम दिया जाता है,

मास्को का बाल्य विभाग

संध्या समय हम लोग फिर मास्को लौटे। वहाँ पहुँच कर हम लोग बाल्य विभाग में गये। लड़के अवस्था के अनुसार विभिन्न स्थानों में बँटे हुए थे। रूस में वहां की सरकार ने लड़कों के पालन-पोषण तथा शिक्षा का भार ले रखा है, इस लिये तीन वर्ष की ही अवस्था से लड़कों के खाने-पीने खेलने कूदने पढ़ने लिखने आदि का प्रबन्ध सरकार के शिक्षा-विभाग की ओर से किया जाता है। तीन वर्ष के पहले उन के प्रति स्वास्थ्य-विभाग की जिम्मेदारी रहती है। उन के लिये हर प्रकार की सुविधा दी जाती है। उन का रहन-सहन, पालन-पोषण आडम्बर रहित होता है पर किसी प्रकार की कमी नहीं रहती। वहाँ पर बच्चों को किण्डरगार्टन द्वारा शिक्षा देने का काफी प्रबन्ध है। किण्डरगार्टन के प्रत्येक विभाग में खेल के कमरे तथा प्रत्येक सेक्शन में खेल के मैदान होते हैं। पर यहाँ की किण्डरगार्टन–प्रणाली यूरोप के अन्य देशों से भिन्न है। यहाँ की माताओं को इस किण्डरगार्टन-प्रणाली से बड़ी सहू-लियतें और बहुत आराम मिलता है।

यहाँ की स्त्रियों को बच्चा जनने के दो मास पहले और दो मास पीछे तक किसी प्रकार का काम नहीं करना पड़ता है। सोवियट सरकार बालकों को विशेष लाड़-प्यार से रखती है। वह अच्छी तरह समझती है कि इन्हीं पर राष्ट्र का भविष्य निर्भर है। सब से अधिक तारीफ़ की बात तो यह है कि यहाँ के छोटे छोटे बच्चों को भी राजनीतिक बातों से पूरा वाक़िफ़ रखा जाता है। भ्रमण के समय एक बार, हमारे दल के एक अंग्रेज महाशय ने एक दस वर्ष के लड़के से पूँछा, "तुम्हें ज़ारशाही शासन की अपेक्षा सोवियट शासन प्रणाली क्यों अधिक पसन्द है, लेनिन भी तो एक नया ज़ार ही है फिर उसे

क्यों पसन्द करते हो ?" यह बात सुनते ही वह लड़का आग बबूला हो गया और कहने लगा, "यह बात बिलकुल थोथी और द्वेष से भरी हुई है। हम लोग ज़ार के भयङ्कर शासन के आधीन नहीं हैं। हम लोग स्वयं अपने सोवियट (प्रजातन्त्र सरकार) के संरक्षण में हैं। यह सरकार ऐसी है, जिस में मेरे पिता और लेनिन के अधिकार बिलकुल बराबर हैं। लेनिन को, हम लोगों ने देश का अधिपति बनाया है और चाहें तो उसे आज इस पद से हटा सकते हैं। सोवियट आप लोगों के जैसे पूँजी-पतियों के हाथ में नहीं है। यह सर्व साधारण के हाथों में है। सोवियट हमारा एक बड़ा परिवार है और हम सब उस के मेम्बर हैं। हमारे ग्रामों और नगरों से ज़िला सोवियट के लिये, ज़िला सोवियट से प्रान्तीय सोवियट के लिये और प्रान्तीय से केन्द्रीय (सार्व देशिक) सोवियट के लिये मेम्बर चुने जाते हैं और इस प्रकार हमारे देश के सभी आदमी अपने शासन कार्य्य में समान रूप से भाग लेते हैं।" उस लड़के की ऐसी जानकारी और सराहनीय ढँग की बात चीत से हम लोग मुग्ध हो गये और ज़ोर से हँसते हुए उस की तारीफ़ करने लगे।

क्रेमलीन का घण्टाघर

क्रेमलिन के घण्टाघर से जहां से—पहले ज़ार के गुण-गान के स्वर निकलते थे; अब लाल सेना (बोलशेविक) के महिमा गान सुनाई पड़ते हैं। एक दिन संयोगवश मैं रेड स्कायर में अकेला ही जा पहुँचा। रात के ९ बज रहे थे। घण्टाघर से ९ घण्टों के बजने के बजाय एक विचित्र स्वर सुनाई पड़ा। मैं भौचक्का सा खड़ा रह गया। घण्टाघर की ओर मैं देख रहा था। परन्तु कुछ समझ में न आया। एक फ़ौजी अफ़सर ने जो उधर से जा रहा था पूछा "इतने विस्मित क्यों हो।" मैंने

जो उन्हें पसन्द होता है। (लेखक को भारतीय जेल में लकड़ी चीरने का काम दिया गया था क्यों कि उस ने राजनीतिक प्रचार कार्य्य किया था) राजनैतिक क़ैदियों को तो वहाँ और भी आराम है। उन के साथ विशेष अच्छाई का व्यवहार होता है। उन को कुछ नहीं करना पड़ता। वे जितनी पुस्तकें चाहें पढ़ सकते हैं और स्वच्छन्दतापूर्वक अपने मित्रों से मिल सकते हैं।

विदेशियों की स्थिति

परदेशियों को वहाँ जितनी सुविधा है, उतनी और किसी देश में नहीं है। सोवियट सरकार का उद्देश्य अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर संगठन है। इस लिये अन्य राष्ट्रों के प्रतिनिधियों को मेहमान मान कर यथोचित स्वागत किया जाता है। उन को किसी प्रकार का ख़र्च नहीं करना पड़ता। सरकार इन को सब आवश्यक वस्तुयें देती है। अन्य विदेशी लोग जो भ्रमण करने के लिये वहाँ जाते हैं, उन्हें खर्चा नहीं दिया जाता, परन्तु और सभी सुविधायें दी जाती हैं। यदि वे वहाँ बस जायँ तो उन्हें भी वही अधिकार प्राप्त होते हैं जो वहाँ के नागरिकों को प्राप्त हैं। एक आश्चर्यजनक बात वहाँ पर यह भी है कि वहाँ के बाशिन्दे जबरन फ़ौज में भर्ती नहीं किये जाते। विदेशियों को वहाँ बस जाने के लिये अनेक सुविधाएँ दी जाती हैं। उन लोगों की जायदाद भी किसी प्रकार तब तक ज़ब्त नहीं की जाती, जब तक कि वे क़ानून की सीमा के बाहर नहीं जाते।

रूसी लोगों का रहन-सहन

सोवियट समाज के सामाजिक नियम और देशों से बिलकुल भिन्न हैं। पहनने ओढ़ने के लिये कोई नियम अथवा रोक-टोक नहीं है। बहुधा लोग फ़ौजी बूट, फ़ौजी कोट और बिरजिस पहनते हैं। उन की खाकी टोपियों में एक लाल सितारा लगा रहता

है। ज़नाने और मरदाने पहिनाव में विशेष अन्तर नहीं है। स्त्रियाँ बहुधा सिपाहियों का कपड़ा पहनती हैं। बच्चे बड़ी शान से ख़ाकी पोशाक पहने हुए स्वतन्त्र वायुमंडल में विचरण करते हैं। उन्हें देख कर यह भाव अंकित हुए बिना नहीं रहता कि ये बालक एक दिन शूर और देश रक्षक बनेंगे। वास्तव में वे देश की सजीव आशा हैं। मैं ने एक बार एक सिपाही से बातें करते हुए पूछा कि इन १५ वर्ष से कम उम्र के बालकों को ख़ाकी यूनीफ़ार्म पहनने की आज्ञा क्यों है? इस पर वह कहने लगा कि शायद आप नहीं जानते कि सिपाही लड़कपन में ही तैयार किये जाते हैं। जब तक उन की मनोभावना हम इस प्रकार के जीवन की ओर आकृष्ट न कर लें, हमें उन के दिखावटी सिपाही बनाने से कोई लाभ नहीं है। वे सिपाही दिल से होंगे, पोशाक से नहीं। यदि हमें आज अचानक किसी साम्राज्यवादी शत्रु का सामना करना पड़े, तो हम इन सिपाहियों से मज़े में काम ले सकते हैं। उस समय हमें नये किराये वाले सिपाही काम न देंगे और राजकोष से अनावश्यक धन उन की शिक्षा आदि के लिये व्यय होगा। इस फ़ौजी पोशाक से ही फ़ौजी भावनाओं का उदय होता है। हम अपने बच्चों में नई भावनाएँ—ऐसी नई भावनाएँ जो सब प्रकार के विदेशी आक्रमणों का सामना करेंगी——भर रहे हैं। और यह बिलकुल मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त है। किसी भी देश की रक्षा उस के देश वासियों और ख़ास कर उस के नौनिहालों से ही हो सकती है।

श्रमजीवियों की दशा

साम्यवाद का आधार श्रमजीवियों की जागृति है। रूस में सोवियट पंचायतों को कहते हैं, ये पंचायतें इस समाज और साधारण [illegible] हैं। सारे राष्ट्र का शासन-यंत्र इन पंचायतों

की मुट्ठी में है। श्रमजीवियों का सर्व-सर्वा वही हो सकता है, जो सोवियटों के प्रतिनिधियों का अध्यक्ष होता है। नीचे की सोवियटों को अधिकार है कि अगर उन के निर्वाचित प्रतिनिधि ऊपर की सोवियट में उन के मत का पूर्णतया प्रतिपादन न करें, तो वे उन्हें वापस बुला लें। पार्लामेन्टरी पद्धति के विरुद्ध केन्द्रीय सोवियट, स्थानीय और प्रान्तीय सोवियटों के पूर्ण प्रभाव में रहती है और वे अपनी आज्ञा तथा सूचनाएँ समय समय पर केन्द्रीय सोवियट के प्रतिनिधियों के पास भेजा करती हैं। १९२०-२१ के साम्यवाद नामक युद्ध के समय सर्व साधारण को समान खाद्य सामग्री और अन्य आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति की गई थी। यद्यपि नई आर्थिक नीति हर रूप से लागू हो गई थी, तो भी खेतों के कृषकों और कल कारख़ानों के मज़दूरों के अधिकारों पर इसका कोई भी प्रभाव न पड़ा था।

किसान

कल कारख़ानों में काम करने वालों के बाद किसानों का नम्बर आता है। रूसी भाषा में किसान को 'मूजिक' कहते हैं। ये बेचारे मूजिक जब तक "कूलियाकों" (कुलियाक, रूसी भाषा में अधिकार सम्पन्न जमींदारों को कहते हैं) की एड़ियों के तले दबे पड़े थे, बड़े ही संकीर्ण विचार के थे। अपने आपको भाग्य के भरोसे छोड़ रखना उन का स्वभाव हो गया था। सारे यूरोप में कहीं भी किसानों के साथ उतना बुरा बर्ताव नहीं होता था, जितना कि रूस में। ये बेचारे बाह्य जगत से बिलकुल जानबूझ कर इस लिये अलग रखे जाते थे कि वे कूप-मंडूक ही बने रहें। इस का फल भी ऐसा ही होता था। इन ग़रीबों को यह भी पता न था कि राजनीति किस चिड़िया का नाम है। राजनीति से उन का कोई सम्बन्ध न था। उन का काम बस हाकिमों के हुक्म

की तामील करना था। अधिकारियों की उँगली के इशारे पर नाचना पड़ता था। परन्तु ऐसी स्थिति अधिक काल तक न रह सकी। अज्ञानता से अनुचित लाभ उठाना अधिक काल तक न टिक सका। इन कृषकों में से ही ऐसे नवयुवक पैदा हुए जो कि आग के गोले कहे जा सकते थे। उन से चुप न रहा गया। उन के प्रति गुलाम का सा व्यवहार होता था। इस अपमान ने उन के हृदयों में गहरी चोट पहुँचाई। अपनी दुरावस्था का ज्ञान होते ही वे विप्लवी और भी कट्टर क्रान्तिकारी हो गये। एक मनुष्य गुलाम, अछूत या जाति बहिष्कृत हो कर रह सकता है पर, जिस समय उसे अपनी स्थिति का पूरा ज्ञान होता है, उसी वक्त से वह अपनी सम्पूर्ण शक्तियों को लगा कर अपनी दासता की बेड़ी के काटने में जुट जाता है; अपनी पराधीनता के कारणों को ढूँढ़ने में तत्पर हो जाता है और जिस क्षण उसे अपनी वास्तविक स्थिति का ज्ञान हो जाता है, उसी समय वह वर्तमान सामाजिक कुरीतियों पर कुठारा–घात करने के हेतु कार्य्यक्षेत्र में कूद पड़ता है। स्थिति का सम्यक ज्ञान, जैसा कि मैं समझता हूँ, दो कारणों से होता है। प्रथम तो शिक्षा और द्वितीय क्रांति।

यदि शिक्षा मात्र को ही आधार मान कर यह आशा की जाय कि इस के द्वारा दासत्व--बन्धन से धीरे धीरे मुक्ति प्राप्त की जा सकती है तो यह सर्वथा असम्भव है। क्यों कि उस के विरुद्ध संग्राम की कुछ तैयारियों की भी आवश्यकता है। यदि सैकड़ों वर्षों के किये गये अत्याचारों के फलस्वरूप पीड़ित लोगों के कारण यह संग्राम छिड़ता है तो उस का रूप बड़ा ही विकट होता है। वह भूकंप का रूप धारण करता है और उस का परिणाम भीषण होता है। इन बातों को ठीक ठीक समझने के लिये केवल पुस्तकावलोकन ही पर्याप्त नहीं है। इस की समुचित जानकारी के लिये आवश्यकता इस बात की है कि कोई

उन, रूसी कृषकों और पीड़ित व्यक्तियों के बीच में जा कर रहे, जो समाज के निम्नतम श्रेणी के कहे जाते हैं। तभी स्थिति का पूर्ण परिचय प्राप्त किया जा सकता है। रूसी कृषक, जो कि किसी समय पादरियों के हाथ की कठपुतली थे, अब इस मूल सिद्धान्त को भली-भाँति समझने लगे हैं। जिस धर्मोन्माद ने उन्हें ज़ारशाही का शिकार बनाया था, उस के सिद्धान्तों के अनुसार अब वे अपने प्रश्नों का समाधान नहीं करते हैं। वे इस बात को भली-भाति समझने लगे हैं कि उन की वर्तमान अवस्था का एक मात्र कारण विप्लव ही है और अब वे केवल इस विप्लव--धर्म्म के ही उपासक हैं। धर्म्म मनुष्यों का और विशेष कर रूसी कृषक समाज का एक नशा है और विप्लव ने इस के बदले में उन्हें दूसरी ही योग्य वस्तु दी है।

अपरिश्रमी और 'नेपमैन'

'जो परिश्रम न करें उन्हें खाने को न मिले' सोवियट रूस का यह मुख्य सिद्धान्त है। जिन लोगों की अवस्था अठारह और पचपन वर्ष के बीच में है, और जो शारीरिक तथा मानसिक शक्ति से स्वस्थ हैं, वे यदि कोई काम नहीं करते तो उन की सामाजिक अथवा राजनैतिक क्षेत्र में किसी प्रकार की भी सत्ता नहीं होती। सरकार ऐसे लोगों की शिक्षा व चिकित्सा के लिये उत्तरदायी नहीं है। इन अपरिश्रमी (बेकार) लोगों में अधिक संख्या उन्हीं लोगों की है जो ज़ारशाही के समय के मध्यम श्रेणी के लोग हैं। जो अपनी उपार्जित सम्पत्ति को पृथ्वी में गाड़ कर रखते हैं और जब कभी उन्हें आवश्यता होती है, वे रोकड़ से रुपया ले ले कर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। अन्त में जब उन का सब रुपया पैसा ख़र्च हो जाता है, तो बाध्य हो कर वे कारखाना और विद्यालयों का आश्रय लेते हैं। उसी समय

से साम्यवाद के लाभ उन्हें प्राप्त होने लगते हैं, जिस से कि अभी तक वे वञ्चित थे। इस प्रकार अब वे सच्चे मज़दूर हो जाते हैं। नई आर्थिक नीति के फलस्वरूप ही "नैपमन" का जन्म हुआ है। साम्यवाद के स्थापित करने के लिये जब युद्ध हो रहा था, उस समय यह लोग ख़्याली पुलाव पकाते थे। काम न करने वालों की ही श्रेणी में इन की गिनती होती है। ख़रीद फ़रोख़्त की आमदनी से ये लोग अपना जीवन बसर करते हैं। ये लोग उन्हीं में से हैं, जिन्हें असन्तोष और अनिच्छा पूर्वक सोवियट शासन-प्रणाली को मानना पड़ा है।

स्त्री समाज

सोवियट पद्धति ने पुरुषों की भांति स्त्रियों को भी पूर्णतया स्वतंत्र करने में आश्चर्य जनक कार्य्य किया है। अब तक जिन अधिकारों से रूसी महिलाएँ वञ्चित थीं, सोवियट शासन पद्धति के स्थापित होते ही, एक क़ानून द्वारा उन्हें वे अधिकार दे दिये गये; उन्हें सामाजिक स्वतंत्रता दी गई और उन्हें वे सभी सामाजिक तथा राजनीतिक अधिकार प्राप्त हो गये, जो पुरुषों को प्राप्त हैं। विवाह अब कोई सौदा न रह गया। अब वैवाहिक सम्बन्ध परस्पर की स्वीकृत पर होता है और परस्पर की स्वीकृत से ही टूटता है। किसी का विवाह तब तक ठीक और जायज़ नहीं समझा जाता, जब तक उस की रजिस्ट्री सरकार के इस विभाग में नहीं हो जाती। स्त्री-स्वातन्त्र्य के स्वीकार कर लिये जाने का प्रत्यक्ष फल यह हुआ है कि समाज गुप्त व्यभिचार और वेश्यावृत्ति से मुक्त हो गया है। वे लैसन्सयाफ़्ता गृह, जहाँ ये नारकीय कृत्य हुआ करते थे, अब बिलकुल बन्द कर दिये गये हैं, और इस प्रथा के मूलोच्छेद करने के लिये बहुत से कड़े क़ानून बना दिये गये हैं।

औद्योगिक उन्नति

सोवियट रूस में शहर में रहने वाले लोग ३० प्रतिशत हैं। इन में से सेना, अधिकारी वर्ग तथा बेकारों को छोड़ कर ८ प्रतिशत श्रमजीवी रह जाते हैं, जिन के हाथों में मज़दूर वर्ग का प्रतिनिधित्व है। नई आर्थिक नीत के पूर्व राज्य के उद्योग धन्धे इन्हीं की संरक्षता में संचालित किये गये थे। यहाँ हेडसेण्टर" के क़रीब ६० केन्द्र थे। ये केन्द्र उच्च आर्थिक समिति के अधीन थे, जो कभी कामेनिफ और कभी राइकाफ की देख रेख में थी।

कृषि

यहाँ के सारे देश की जान किसान हैं। १६ करोड़ की आबादी में देश में लगभग १४ करोड़ किसान ही हैं। जिस प्रकार क्रान्ति के पहले इन किसानों की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। इन के हाथ में ज़मीन का केवल एक तिहाई भाग था। और वह भी बहुत ही निकृष्ट। कुलियाक लोगों ने इन विचारों को सदा के लिये दास बना रक्खा था। पर, उसी तरह अब वे ख़ूब समृद्धि-शाला हैं। क्रान्ति ने इन्हें कुछ दूसरी ही शिक्षा दी है। क्रान्ति ने भूमि पर परिश्रम करने वाले कृषकों का देश में विशेष अधि-कार स्वीकार किया। १४ फरवरी १९१८ को एक ऐक्ट के द्वारा भूमि पर सर्वसाधारण का अधिकार मान लिया गया। और १९१९ में ज़मीन का ९६ प्रतिशत भाग किसानों के अधिकार में आ गया। बची-खुची भूमि सहयोग (कोआपरेटिव) केन्द्रों के हाथ में आ गई।

मेरी बीमारी

अप्रैल १९२१ में मेरी यहाँ की इन बातों की पढ़ाई एका-एक स्थगित हो गयी। बर्फ़ का गिरना प्रायः बन्द हो गया। इस

लिये मौसम के अकस्मात परिवर्तन हो जाने और कुछ अपनी लापरवाही के कारण मैं अस्वस्थ हो गया और मुझे डाक्टर के परामर्शानुसार टर्किस्तान जाना पड़ा। बहुत ही कड़ी सर्दी में तीन मास मैं ने मास्को में बिता दिये थे, किन्तु किसी दिन ज्वर या सिर दर्द तक नहीं हुआ। परन्तु मौसम के एकाएक बदल जाने के कारण यह गड़बड़ हो गई। इन तीन महीनों में चाय के अतिरिक्त एक भी बूँद जल न पिया। इस भीषण सर्दी का जिसमें कि थर्मा-मीटर का पारा शून्य से भी ४० डिग्री कम हो जाता था, मैं ने बड़े आनन्द से सामना किया, किन्तु अन्त में इस बीमारी के कारण किसी अच्छे और रह सकने योग्य मौसम वाले स्थान में चला जाना अनिवार्य्य हो गया। मैं भारतीय निर्वासितों के केन्द्र ताशक़ंद में पहुँचा। मेरे भारतीय मित्रों ने बड़े तपाक से मेरा स्वागत किया। वे बन्दूक और वायुयान चलाने में बड़े प्रवीण हो गये थे। मेरे भाग्य में कुछ दूसरा ही था। मेरी बीमारी भयावनी हो रही थी। धन्यवाद है, भाई गोल्डस्टेन को जिन्हों ने कि मुझे बहुत शीघ्र ही पुनः स्वस्थ कर दिया। इस समय डाक्टरों ने स्पष्ट कह दिया था कि शरीर में किसी भयानक रोग के लक्षण प्रकट हो रहे हैं और यदि मैं शीघ्र ही क्रीमिया के किसी सेनिटोरियम में जाने के लिये तैयार न हुआ तो छः सप्ताह से अधिक न बच सकूँगा। यह था डाक्टरों का निर्णय। मैं सैर-सपाटों से अब बेतरह थक गया था और मेरी बड़ी अभि-लाषा थी कि अपना कुछ काल अपने भारतीय भाइयों के साथ व्यतीत करूँ। किन्तु बीमारी बड़ी तेज़ी से बढ़ती जा रही थी। कोई भी वस्तु पचा सकने में मैं सर्वथा असमर्थ हो गया, दूध तक भी नहीं हज़म कर सकता था। अतः विवश हो स्वास्थ्य विभाग के अफ़सर को अपने क्रीमिया जाने की सूचना दे दी। एक अस्पताली गाड़ी द्वारा हम चार दिन की जगह पन्द्रह दिन

में पहुँचे, क्योंकि यह सैनिटोरियम] ट्रेन (स्वास्थ्य--सदन गाड़ी) होने के कारण तेज़ नहीं चल सकती थी।

हफ़्तों की ढीली यात्रा के बाद हमारी गाड़ी समारा पहुँची। यहाँ पर मैं ने ऐसी धीमी गाड़ी से जाने से इन्कार कर दिया और डाक द्वारा सिवास्टोपोल को, जो मेरी इच्छा--नुसार तुर्किस्तान के डाक्टरों के अफ़सर ने तज़वीज़ कर दी थी, जाना अधिक श्रेयस्कर समझा। यहाँ मुझे बहुत ही कठि--नाइयों का अनुभव हुआ। इधर अकाल पड़ा हुआ था। लोग भूखे-प्यासे इधर-उधर भटक रहे थे। बेचारे अधिकारी बड़े बे-चैन से थे। शासक वर्ग कई कई दिन लगातार भूखों रहते थे। ऐसा मालूम होता था कि राज्य के सारे संगठनों को लक़वा मार गया हो। लोग गाड़ियाँ रोक रोक कर तुर्किस्तान जा रहे थे, जहाँ उन्हों ने अच्छी पैदावार की ख़बर सुन रखी थी। दो दिन तक मेरी ख़बर किसी ने न ली। मेरे पास कुछ रुपये थे, जो स्वास्थ्य-विभाग रूसी रोगियों को ताज़ा दूध के लिये देता था। इस लिये मुझे इन रुपयों से बड़ा आराम मिला। मैं तो न कोई गाड़ी ही पा सका और न अधिकारियों के पास ही पहुँच सका जो इस भीषण अकाल से लड़ने में संलग्न थे। मृत्यु--संख्या बहुत बढ़ गई थी। अब मृत्यु से ही त्राण था, क्योंकि यूरोपीय लोगों के प्रति की गई सारी अपीलें व्यर्थ सिद्ध हुईं। अमेरिका थोड़ा पिघला भी, लेकिन तब तक समय निकल चुका था। यहाँ दो शब्द समारा नगर के सम्बन्ध में कह देना संभवतः अनुचित न होगा। यह नगर प्रसिद्ध वाल्गा नदी के तट पर स्थित है। अपने ऐतिहासिक और व्यापारिक गौरव के कारण बड़ी बड़ी अट्टालिकाओं और गिर्जाओं से भरा हुआ छोटा मास्को प्रतीत होता है। मेरे यहाँ पहुँचने के तीसरे दिन रेवकम्ब (विप्लव समिति का एक सदस्य) मेरे पास आया, और मुझे

अपने दल के कार्यालय में ले गया। मेरा परिचय सभापति महोदय से कराया गया। यह ३० वर्ष के एक युवक थे और अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए भी बड़े उत्साही दिखाई पड़ते थे। मुख्य विषय जिस पर, उन्हों ने बात आरम्भ की अकाल था। दल की ओर से मेरा स्वागत किया गया। समारा में मैं पहला ही भारतीय था। एक सप्ताह इन लोगों के साथ कटा। एक दिन मैं ने अपने परवाने उन्हें दिखाये और क्रीमिया जाने की इच्छा प्रकट की। किन्तु उस समय समारा और क्रीमिया के बीच में कोई नियमित डाक-गाड़ी न थी। अतः उन्हों ने मुझे मास्को जा कर 'स्कुरी' (तेज़ गाड़ी) से जाने का परामर्श दिया। इस अकाल और घोर दरिद्रता के दुर्दिन में भी रूसी लोगों ने अपने अतिथि सत्कार के सद्गुण को नह छोड़ा था। समारा में पहिले दो दिनों में मैं एक होटल में जिस के स्वामी एक बड़े खुशमिज़ाज दम्पति थे, एक गिलास दूध के लिये गया। यद्यपि इस समय रूसी भाषा पर मेरा पूर्ण अधिकार हो गया था, तो भी मेरे डील--डौल ने मेरी राष्ट्रीयता की पोल खोल ही दी। "आप रूसी बोलते तो बड़ा सुन्दर हैं किन्तु मित्र, आप रूसी जैसे दिखाई नहीं पड़ते," उस चतुर व्यक्ति ने कहा क्या आप फ़ारस के हैं या काफ़काज अथवा बुख़ारा के? 'नहीं महाशय मैं हिन्दू हूं', मैं ने कहा। "ओह! मैं एक 'हिन्दू' (Indoos) को देख के बड़ा प्रसन्न हुआ। मैं ने इस से प्रथम किसी हिन्दू को नहीं देखा था। हमारे घर में पधारिये, मैं आप को वह दूध कभी न दूँगा, बल्कि आप को इस से अच्छा दूध पिलाना और थोड़ी बातें करना चाहता हूँ।" मैं अनिच्छा से उन पति-पत्नियों के साथ हो लिया। वे मुझे अपने स्थान पर ले गये। यह छोटा सा सुन्दर घर—एक खास तरह के तातारी ढंग से बना था। इस आदमी ने एक भारतीय की बातें

बड़े प्रेम से सुनीं। उस की एक षोड़श वर्षीया बालिका तथा १४ और १० वर्ष के दो बालक मेरे पास बड़ी प्रसन्नता से आए।

"कहिये आप हमारे रूस को कैसा पसन्द करते हैं ?" बाल मण्डली ने आते ही मुझ से यह प्रश्न किया। मैं ने भी उत्तर दिया "बहुत अच्छा।" मेरे इस उत्तर से वे बड़े प्रसन्न हुए। वे मुझे घेर कर बैठ गये, और प्रश्नों की झड़ी लगा दी। उन्हों ने एक साथ ही सैकड़ों प्रश्न पूंछ डाले। बालिका ने कहा मुझे तो भारत के कवि टैगोर बड़े अच्छे लगते हैं। बड़े ने कहा मुझे चक्रवर्त्ती अर्थ मेटिक पसन्द है। सब से छोटे साहब तो भारत के सपेरों पर ही रीझे थे। ये बातें हो ही रही थीं कि माता एक गिलास में मेरे लिये बढ़िया ताज़ा दूध ले कर आ गईं। बालकों को भी प्यालों में दूध दिया गया। हम लोग अभी दूध को ख़तम भी न कर पाये थे कि चाय की तैयारियाँ होने लगीं। भोजन करने की मेज़ पर सफ़ेद रोटियों के ढेर और मक्खन के गोले सजे हुए थे। सारा परिवार एक हिन्दोस्तानी अतिथि के साथ मेज़ के चारों ओर भोजन करने बैठ गया। बालिका ने भोजन परोसने का कार्य्य चुन लिया था। अब उन के, भारतीय समाज से, उस के साधु, सपेरों और जादूगरों से परिचित होने की उत्सुकता के कारण मुझ पर फिर प्रश्नों की झड़ी लग गई। भारतीय रिवाज के विपरीत मैं एक दूकानदार का अतिथि बन कर बड़ी मुश्किल में पड़ गया और सोचने लगा कि इस सत्कार और शिष्टाचार का बदला किस प्रकार चुकाया जाय ! किन्तु यह समस्या इतनी शीघ्र हल होने वाली न थी। मैं ने छोटे बच्चे को ३०० रूबल (रूसी सिक्का) देने चाहे, किन्तु उस के माँ-बाप ने इस पर आपत्ति की और किसी ज़रूरत के लिये रख छोड़ने का अत्यन्त आग्रह किया। पिता ने कहा कि यह हमारा कर्तव्य है कि हम आप से एक अतिथि जैसा व्यवहार करें, क्यों कि आप

परदेशी हैं और विशेषतः भारतीय—जिस जाति का हम लोग सब से अधिक सम्मान करते हैं।

पुनः मास्को को

'पृथ्वी गोल है इस नियम के अनुसार मैं भी फिर मास्को वापस आ गया। इन्हीं दिनों वहाँ पर वहाँ की सरकार का तीसरा वार्षिक अधिवेशन था। होटल डीलक्स ठसाठस भरा हुआ था। कुछ भारतीय चेहरे भी दृष्टिगोचर हो रहे थे। ये लोग जर्मनी, फ्रान्स,अमेरिका आदि से साम्यवादियों की इस तीसरी अन्तर्राष्ट्रीय काँग्रेस में दर्शक की तरह सम्मिलित होने के लिये आये हुए थे। षड्यन्त्रकारी मौलाना अब्दुलरब ने नव-आगन्तुकों में से कुछ चेले बना लिये थे। नये आये हुओं में श्री मुहानी और श्रीमती सरोजिनी नायडू के भाई श्री वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय बहुत प्रसिद्ध थे। वीरेन्द्र बाबू से मिल कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। यहाँ काँग्रेस की कार्य्यवाही और उस की सफलता का विवरण लिखना व्यर्थ सा है, क्यों कि इस का विवरण समाचार पत्रों तथा इस के कार्य्यालय के कई सीरियल नम्बरों में छप चुका है, और इस छोटी सी पुस्तक में सब बातें लिखना सम्भव भी नहीं है। एक सप्ताह मास्को ठहरने के अनन्तर मैं एक डाक गाड़ी द्वारा सिवास्टोपोल को रवाना हो गया। मास्को आने से एक बहुत बड़ी सुविधा यह हो गई कि स्वास्थ्य-विभाग के प्रधान अधिकारी से सेवास्टोपोल सनिटोरियम के प्रधान अधिकारी के नाम सिफ़ारिश का एक बहुत ज़ोरदार पत्र मिल गया।

सेवास्टोपोल

मास्को से अज़ोव्सागर तक समतल देश है। इस में कहीं कोई पहाड़ी नहीं है। यह सोवियट रूस का 'अत्यन्त उपजाऊ भाग है। यहाँ अनाज के बड़े बड़े गोदाम हैं। जिन्हें हस्तगत करने

के लिये जर्मनों ने घनघोर युद्ध किया था। उकराइन (Ukraine) के गेहूँ की समता शायद ही पृथ्वी का और कोई गेहूँ कर सके। यहाँ गेहूँ बहुत सफ़ेद और बड़ा होता है। ज़ारशाही के समय में यह स्थान फ्रान्सीसियों की देख-रेख में था और इस का सब से बढ़िया माल फ्रान्सीसी सरदारों के लिये शराब बनाने के काम में आता था। क्रान्ति ने इन जागीरदारों को निकाल बाहर कर दिया और भूमि अब कृषकों को दे दी गई है।

खुरासान से जो क्रीमिया प्रायःद्वीप का द्वार है—छोटी छोटी पहाड़ियों की लहरें सी बन जाती हैं और देश को गोरीला--युद्ध के उपयुक्त बना देती हैं। एक प्रकार से यह पर्वत--मालाएँ विदेशियों के आक्रमण से देश की रक्षा करती हैं। क्रीमिया संसार में सब से अच्छे फल उत्पन्न करने वाले स्थानों में से एक ख़ास स्थान है। एक दिन-रात की यात्रा के पश्चात् गाड़ी सिवास्टोपोल पहुँची। मास्को के स्वास्थ्य-विभाग के, यहाँ के, हेल्थ आफिसर को पहले से ही तार दे देने के अनुग्रह के कारण मुझे कोई असुविधा न हुई। सब से पहले मैं विप्लव--समिति में गया और इस के अनन्तर सैनिटोरियम को। पाँच डाक्टरों की एक कमेटी ने मुझे देखा और सर्व--सम्मति से निर्णय दिया कि मेरे हृदय और यकृत बढ़ जाने के अतिरिक्त और कोई रोग नहीं है। मुझे अत्यन्त आरामदेह कमरे में रखा गया और आक्सीज़न-स्नान की व्यवस्था की गई। रूस में स्वास्थ्य लाभ करने के स्थानों में क्रीमिया एक अत्यन्त स्वास्थ्यप्रद जगह है। इस के बाद कनकासस का नम्बर है। क्रीमियन लिटोरल के समस्त सेनिटोरियम अब सरकार के हाथ में हैं और मज़दूरों के लिये स्वास्थ्य-लाभ करने को बिल्कुल मुफ़्त व्यवहार में आते हैं। यहाँ पर इस समुद्र तटवर्ती विराट सेनेटोरियम के अतिरिक्त बोलकलाव, याल्टा आदि द्वीपों में भी कई छोटे छोटे सेनिटोरियम हैं।

आश्चर्य की बात यह थी कि ये संस्थाएँ उस समय भी खाद्य सामग्री से भरीपुरी थीं, जब कि सारा देश दुर्भिक्ष के विकराल गाल में पड़ा हुआ था। सोवियट शासन की चिकित्सा-शाली डाक्टरी के ताज़े से ताज़े आविष्कारों पर निर्भर है। रोगियों के मनोरंजनार्थ थियेटर और संगीत का बड़ा सुन्दर प्रबन्ध है। ये खेल प्रायः हास्यरस के और छोटे छोटे होते हैं।

पन्द्रह दिन आक्सीजन स्नान और इलाज से मैं केवल स्वस्थ ही नहीं वरन् आशातीत तगड़ा भी हो गया। मैं बिल्कुल ही बदल गया। सेनिटोरियम का नियम था कि कोई भी रोगी छः सप्ताह से पहिले सेनेटोरियम नहीं छोड़ सकता। अतः स्वस्थ हो जाने पर इस बन्धन से थोड़ी असुविधा सी मालूम हुई!

नये मित्र

मैं प्रतिदिन वालग्रान्स जो कि समुद्र के तट पर ही था, घूमने जाया करता था। संयोग से मैं ने अपनी ही अवस्था (२०—२१ वर्ष) के कुछ विद्यार्थी मित्र बना लिये। इन की मित्रता प्राप्त कर मैं बहुत ही सुखी और प्रसन्न रहा करता था। ये भी एक भारतवासी से, जिस जाति से वे केवल पुस्तकों द्वारा परिचित थे, बड़े प्रसन्न रहते थे। इन मित्रों से मुझे जो प्रसन्नता प्राप्त हुई वह अकथनीय है। अब तक मुझे उन के प्रेम के नाम—मर्कन, लूना, एलेकसेन्डर आदि—स्मरण हैं। बड़े ही अच्छे मित्र थे। यदि किसी दिन मुझे वालग्रान्स पहुँचने में देर हो जाती, तो यह मित्र मंडली मुझे लेने के लिये सैनेटोरियम आ धमकती उनकी आनन्द और प्रेममयी संगति ने मेरे दिल से और सब बातें भुला दीं। प्रायः मैं उन से उन के घरों पर ही मिला करता था और उन के माता-पिता भी एक ऐसे भारतीय को, जो उन की भाषा में ही संभाषण कर सकता हो देख कर बड़े प्रसन्न होते थे।

एक दिन जब मैं अपने मित्र लूना के घर गया, तो उसे अपनी माता को तरह तरह की युक्तियों और तर्कों से समझाने की विकट चेष्टा में तल्लीन देखा। माता की इच्छा थी कि उस का पुत्र अर्थशास्त्र का प्रोफेसर हो, किन्तु पुत्र का विचार वहाँ की लाल सेना में भर्ती होने का था। माता उसे इस विचार को त्याग देने के लिये आग्रह कर रही थी, किन्तु हमारे 'लूना' उस के प्रति रौद्र-मूर्त्ति धारण कर चिल्ला उठे, "तुम समझती हो कि मैं किसी अपने निजी स्वार्थ के लिये सेना में दाख़िल होना चाहता हूँ। मैं लाल सेना में केवल अपने देश के लिये युद्ध करने, तथा संसार के पूंजीपतियों के अनुचित और स्वार्थपूर्ण हस्तक्षेप से उस की रक्षा करने के लिये ही जाना चाहता हूँ। माँ! यदि तुम्हारी ही तरह सभी ऐसा सोचने लगें तो हमारी, प्राणों की बाज़ी लगाकर जीती हुई इस स्वतन्त्रता की क्या दशा होगी? फिर क्रान्ति की रक्षा कौन करेगा?" अन्त में माता को अनुमति देनी ही पड़ी और मेरा मित्र सेना में दाख़िल हो गया।

बेलक्लोवा

बेलक्लोवा सेनेटोरियम के देखने की उत्कट लालसा से बाधित हो कर मैं इस नगर में पहुँचा। यद्यपि इस स्थान पर इलाज का उतना अच्छा प्रवन्ध नहीं है, जितना कि सेवास्टापोल में; फिर भी भोजन वहाँ से कहीं अधिक अच्छा मिलता है। बेलक्लोव नाले की आकृति की एक छोटी सी खाड़ी के चारों ओर बसा हुआ एक छोटा नगर है। शहर के दोनों ओर ऊँचे पहाड़ों पर बेलक्लोव की सेनायें रहती हैं। इन सेनाओं से तीस मील समुद्र की रक्षा होती है। पन्द्रह मील की दूरी पर स्थित सेवास्टापोल नगर की रक्षा भी इन्हीं सेनाओं द्वारा की जाती है। इस स्थान पर दो सप्ताह तक ठहरने के बाद पूर्णतया स्वस्थ हो कर मैं सेवास्टापोल को रवाना हो गया। जहाँ से फिर मैं मास्को आया।

तेज़ गाड़ी के न रहने के कारण यह पन्द्रह दिन की यात्रा मेरे लिये दुखप्रद और दूभर हो गई, और मैं इस गाड़ी से त्राण पाने की दृष्टि से ख़ारकोव में उतर पड़ा ख़ारकोव मास्को की बराबरी का नगर है। यहाँ पर यूक्रेनिया प्रजातंत्र की राजधानी है। अपने सुरम्य भवनों तथा स्वच्छता में यह दक्षिण प्रदेश का एक ही नगर है। खेद है कि स्थानाभाव से मैं इन नगरों का सविस्तार वर्णन नहीं कर रहा हूं। मुझे यूक्रेसियम मास्को डाकगाड़ी से मास्को जाने की आज्ञा मिल गई और मैं फिर मास्को आया। यहाँ पहुँच कर मुझे एक विचित्र परिवर्तन दिखाई पड़ा भारतीयों के आपस के वैमनस्य के कारण सोवियट सरकार के यहाँ उन का सारा प्रभाव उठ चुका था। लड़ने वाले लोग यूरोप में अपने अपने असली निवास स्थान को अवश्य चले गये थे, किन्तु फिर भी पारस्परिक मनोमालिन्य अपनी पूरी शक्ति से विद्यमान था।

भारतीय समाचार पत्रों से धोखा

मैं ने 'इन्डेपेन्डेन्ट', 'लीडर' और 'स्टेटस्मैन' आदि भारतीय समाचार पत्रों में, जो अब मास्को में आने लगे थे, महात्मा गान्धी की इस भविष्यवाणी को पढ़ा कि एक ही वर्ष में भारतीयों को स्वराज्य हो जायगा! इसे पढ़ते ही मैं बेचैन हो उठा। मै ने भारत आ कर स्वातन्त्र्य-युद्ध में भाग लेने का निश्चय किया। इस के अतिरिक्त और भी कई कारण थे, जिन्हों ने मुझे जल्दी से जल्दी भारत आने पर बाध्य किया अस्तु, मास्को आने पर मैं फ़ारस हो कर भारत पहुँचने का प्रयत्न करने लगा। किन्तु अफ़ग़ान प्रतिनिधि पर, मेरे निवेदन का लेशमात्र भी असर न पड़ा। आलाहज़रत ने, जो कि अफ़ग़ान राजदूत थे, मुझे सूचना दी कि तुम्हें अफ़ग़ानिस्तान से हो कर जाने की आज्ञा देने में हमें कुछ आपत्ति है।

भारतीय मनोविज्ञान

दूसरे देशों में रहने वाले भारतीय अपने स्वभाव के कारण प्रायः एक दूसरे से पृथक रहा करते हैं, जिस का मुख्य कारण उन के अन्तर्गत एक दूसरे के प्रति ईर्षा तथा अविश्वास का होना है। एक मनुष्य ने मेरी अनुपस्थिति में मेरा प्रभाव कम करने के लिये मास्को में कोई भी वात उठा न रक्खी। वे नित्य प्रति कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल (साम्यवादी अन्तर-राष्ट्रीय) पुस्तकालय में जा कर मेरे नाम से पुस्तकें ले आया करते थे। वहाँ से चलने पर उस समय मेरे आश्चर्य्य की सीमा न रही, जब कि मेरे सामने पुस्तकों की एक लम्बी सूची जो कि मेरे नाम से लिखी थीं, लाई गई। तुरन्त ही मैं ने पुस्तकाध्यक्ष के पास जा कर पूछा कि उस ने कब और कौन सी पुस्तक मुझे दी थी। उत्तर में उस ने कहा नहीं,मैं ने पुस्तकें तुम्हें नहीं किन्तु उस्मानी को दीं हैं। इस पर मैं ने जवाब दिया कि उस्मानी तो मैं ही हूँ। [इस घटना के छः महीने पहले वह पुस्तकाध्यक्ष जो मुझे अच्छी तरह जानता था, यहाँ से चला गया था और यह पुस्तकाध्यक्ष नया था।] उस ने कहा 'किन्तु मैं ने तुम्हें' कई महीनों से पुस्तकालय में नहीं देखा।" मैं ने एक काग़ज के टुकड़े पर अपना हस्ताक्षर किया और उस से पूछा कि यह हस्ताक्षर उस के रजिस्टर के हस्ताक्षरों से मिलते हैं अथवा नहीं ? अपनी बात का उत्तर नहीं में पाने पर मैं ने उस से अप्रैल मास की २५ तारीख के हस्ताक्षर देखने को कहा। "हाँ इस प्रकार के हस्ताक्षर यहाँ पर मौजूद हैं, उस ने उत्तर दिया और जो भी पुस्तकें मैं ने ली थीं, वे उस तारीख़ को वापस आ चुकी थीं। इस पर उस ने क्षमा-प्रार्थना के साथ वह सूची वापस ले ली। इस के बाद इस सम्बन्ध में जाँच प्रारम्भ हो गई। मैं नहीं कह सकता कि बाद को इस मामले का क्या हुआ। मास्को से बाकू के लिये रवाना होने के

पहले मैं कितने ही क्रान्तिकारी नेताओं से मिला, जिन के बारे में इस समय कुछ न कहना ही उचित जान पड़ता है। इस के अतिरिक्त इन थोड़े से शब्दों में उन सब का वर्णन करना भी कुछ कठिन ही सा प्रतीत होता है। इस परिच्छेद को समाप्त करने के पहले मैं अपने साथी, टी० यू० आन्दोलन के नेता रेनास्टेन, प्रसिद्ध रूसी अर्थशास्त्रज्ञ फिनवर्ग, पेट्रोफ़ और लुनाचेरस्की को उन के मित्र-भाव तथा उन से प्राप्त हुई सुविधाओं के लिये उन के प्रति हार्दिक धन्यवाद प्रकट करना अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ।

बाकू

मैं एक सुखद, तेज़ डाकगाड़ी पर सवार हो कर २१ सितम्बर १९२१ को मास्को से बाकू के लिये रवाना हुआ। दूसरे दिन अपने किसी मित्र से मिलने के लिये मैं "मिनरलनी वादा" पहुँचा। यहां पर पाये जाने वाले मिनरल वाटर [एक प्रकार का पाचक जल] के कारण ही उपरोक्त स्थान को "मिनरलनी वादा" का नाम दिया गया है। यह पूर्ण रूपेण काकेशिया का गाँव जान पड़ता है। लम्बी दाढ़ी रक्खे हुए इफ़ेन्डीज़, ज्योर्जियन और आर्मीनियन लोग ही प्रायः यहाँ पर बसे हुए पाये जाते हैं। यह रूस के सब से अच्छे स्वास्थ्यप्रद स्थानों में से है। इस स्थान पर अपना कार्य्य समाप्त कर चुकने के पश्चात मैं ने बाकू की ओर प्रस्थान किया बाकू में मैं एक अच्छे स्वच्छ होटल में ठहरा। यह अपने ऊँचे भवन, चौड़ी और साफ़ सड़कों, बिजली और अत्यधिक नाटक घरों को छोड़ कर शेष सभी बातों में फ़ारसी नगर है। वहाँ के निवासी अधिकांश रूसी और तुर्की जाति के हैं, किन्तु रूस के रहने वाले कम हैं। जनसंख्या का अधिकांश भाग आर्मीनियन्स और जिओर्जियन्स का है। यहूदियों की संख्या भी इस स्थान पर कुछ कम नहीं है।

रूस के मिट्टी के तेल का केन्द्र होने के कारण बाकू का वायुमण्डल प्रायः धुएँ के घने बादलों से भरा रहता है। यहाँ के तेल के सौदागरों के बारे में बहुत कुछ कहा जा चुका है और आगे भी कहा जायगा। किन्तु फिर भी सोवियट राज्य के प्रति निष्पक्षता के नाते मैं इस स्थान पर इतना अवश्य कह सकता हूँ कि यहाँ पर भूमि के छोटे छोटे दो भागों की मामूली सम्पत्ति को एक स्थान पर एकत्रित कर दिया गया है और इस प्रकार से इस व्यवसाय को, जिस पर कि आगे का व्यवसाय और कलाकौशल निर्भर है विशेष महत्व का स्थान दिया जाता है। उपरोक्त सम्पत्ति को एक जगह पर केन्द्रीभूत करने के परिणामस्वरूप श्रमजीवियों द्वारा संचालित और शासित तेल के ये मैदान, राष्ट्र की एक बहुत बड़ी चीज़ समझे जाते हैं। और इस नये परिवर्तन के फल-स्वरूप इन मज़दूरों के अन्धेरे झोंपड़े नवीन सुन्दर भवनों में परिणित हो गये हैं।

टर्की को सेना की सहायता

यह, वह समय था जब कि टर्की के भाग्य का निपटारा होने जा रहा था। अस्तु, अधिक से अधिक परिमाण में फ़ौजी सामान और मुसलमान सेनाएँ बाकू से होकर, थकी हुई तरुण टर्की को सहायता देने के लिये कारस् को जा रही थीं। इस विषय की कुछ जानकारी प्राप्त करने की इच्छा से मैं उत्सुकतापूर्वक तुर्की राजदूत के पास गया। ये महाशय ३५ वर्ष के एक सुडौल युवक थे और इन का नाम, यदि मैं भूल नहीं करता तो इस्माइल सुबी था। उन्हों ने कहा "हमारा देश आजकल बहुत बुरी दशा में है। यदि आज दिन सोवियट रूस न होता तो हम लोग कभी के शत्रुओं द्वारा अधीनस्थ किये जा चुके होते। हमारे शत्रु एस्कीशहर के निकट अंगोरा के

पश्चिम २६ मील की दूरी पर है। इस कारण इस समय हम सब लोग बहुत घबड़ाये हुए हैं। ईश्वर बोलशेविकों (रूसियों) को जो आदमियों तथा सामान से हमारी सहायता कर रहे हैं, दीर्घ जीवन प्रदान करें!" दीन दलितों का उद्धार चाहने वालों के लिये निश्चय ही यह एक बहुत बड़ा शोकप्रद समाचार था।

उन्नतिशील बोल्शेविज्म पर एक सरसरी निगाह

सोवियट रूस का वर्णन उस समय तक पूरा नहीं हो सकता, जब तक वहाँ की क्रान्ति के इतिहास और साथ ही उन कारणों को जिन के कारण उक्त क्रान्ति उत्पन्न हो कर सफल हो सकी, पूर्ण रूपेण वर्णन न किया जाय। किन्तु दूसरी ओर इस क्रान्ति का इतिहास उस समय तक पूरा भी नहीं हो सकता जब तक बोल्शेविज्म शब्द की परिभाषा न की जाय और उस की उत्पत्ति पर काफ़ी प्रकाश न डाला जाय। बोल्शेविज्म का अर्थ है 'बहुमत'। इस की उत्पत्ति 'बोलशो' शब्द से है, जिस का अर्थ अधिक अथवा बड़ा है। यह तो इस शब्द का साहित्यिक भाव हुआ, किन्तु यह एक राजनैतिक और विशेष अर्थ रखने वाला शब्द कैसे बन गया यह एक रहस्य है, जिसे अब भी बहुतेरे भारतीय नहीं जानते।

१९०५ की असंगठित उथल पुथल के विफल हो जाने के पश्चात् रूस का प्रजातंत्र दल दो भागों में विभक्त हो गया। बहुमत अथवा बोल्शेविक लोगों ने शान्ति अशान्ति का विचार न करके पहले, आक्रमण करने के सीधे मार्ग को ही हितकर समझ कर, सुसंगठित श्रमजीवी समुदाय से राज्य पर तुरन्त अधिकार कर लेने और किसानों को समाज में बराबर अधिकार देने का निश्चय किया। दूसरे मेन्शेविक दल ने, जो संख्या में कम था, पार्लियामेन्ट द्वारा तथा वैध आन्दोलन कर धीरे

धीरे समान अधिकार प्राप्त करने के शान्तिमय तथा धार्मिक मार्ग का अनुसरण करना निश्चय किया। बोल्शेविक लोगों के समर-क्षेत्र में आने के वाद से मेन्शेविक पार्टी का अस्तित्व, जो उस समय भी साम्यवादी-प्रजातन्त्र दल के पुराने नाम पर ही संतुष्ट था, एक प्रकार से जनता के हृदय से मिट चुका था। ज़ार के राज्य त्याग करने के वाद करेन्स्की के हाथ में अधिकार आने पर, जब उस ने रूस की काँग्रेस के आधार पर थोड़े समय के लिये एक नयी सरकार का निर्माण किया, उस समय उक्तदल एक बार फिर आगे होता दिखाई पड़ा था।

रूस की क्रान्ति

जब तक कि कोई मनुष्य रूस की राज्य क्रान्ति के कारणों से भलीभांति परिचित न हो जाय तव तक उस को यह क्रान्ति एक असम्भव कहानी सी प्रतीत होगी। इस क्रान्ति के अनेक कारण थे। मूर्खता, निर्दयता तथा यन्त्रणा, ज़ारशाही की नित्य-प्रति की वातें थीं। रूस की स्वतन्त्रता के सूत्रधार लेनिन, एक स्थान से दूसरे स्थान को भागते फिर रहे थे। साइबेरिया से यूरोप को जा कर वे वहाँ एक निर्वासित की भाति दिवस बिताने लगे। रूस के होनहार नवयुवक साइबेरिया की वर्फ़ से ढकी हुई ठंढी खानों में सड़ रहे थे और वहां के बड़े बड़े बुद्धिमान और विद्वान लोग क्रैमलिन की चहार दीवारी के अंदर (जहाँ पर उन के सन्मान की स्मृति में अब रेड स्कायर है) बन्द थे। कर बहुत वढ़ा दिया गया था और लोगों को अपनी जीविका चलाना भी कठिन हो गया था। प्रजा पर घोर अत्याचार हो रहा था। प्रायः ऐसा देखा गया है कि निर्दयता और अत्याचार सदा लोगों की सहनशीलता पर निर्भर हैं। इन अत्याचारों से रूस वाले अधीर हो उठे और परिणामस्वरूप उन्हों ने अब और अधिक

दासत्व की शृंखला में रहना अस्वीकार कर दिया। उन में भूखों मरने के कष्ट सहन करने की अब और अधिक शक्ति बाक़ी न थी। उन्हें भूखे रह कर जीवित रहना बहुत कठिन मालूम होने लगा। फलस्वरूप उन्हों ने इस अत्याचार का एक दम अन्त करने का निश्चय किया। उन्हों ने इस के लिये उपाय सोचे और अन्त में अपने कार्य्य में वे सफल भी हुए। उन्हों ने अत्याचार की आत्मा को एक काँच के सन्दूक़ में बन्द कर के पृथ्वी में बहुत गहरा गाड़ दिया। समय रूपी दूरदर्शी यन्त्र से वह अत्याचार अब भी दृष्टिगोचर होता है, पर प्रगतिहीन रूप में।

सरकार का स्वेच्छाचार लोगों को इतना बुरा लगता था कि प्रत्येक मनुष्य को विश्वास हो गया कि अब रूस में सामाजिक क्रान्ति शीघ्र ही होने वाली है। पानी पीने के स्थानों, क़हवागृहों, बाज़ारों और थियेटरों में लोग एक ही विषय पर वार्तालाप करते थे। वे कहते थे कि एक संसार-व्यापी परिवर्तन अवश्यम्भावी है। उन्हें परिवर्तन की लालसा थी, वे परिवर्तन के लिये ईश्वर से प्रार्थना करते थे और रात्रि में परिवर्तन ही के स्वप्न देखते थे। क्रान्ति ही उन का धर्म था। परिवर्तन हुआ और ऐसा हुआ कि उस ने समस्त ज़ारशाही की नींव को हिला दिया और साथ ही राज्य के तमाम संगठन को छिन्न भिन्न कर दिया। यह एक ऐसा भूकम्प था, जिस ने ज़ारशाही की एक एक नस ढीली कर दी। इस की उत्पत्ति प्रलय के लिये हुई थी; किन्तु साथ ही इसे सृष्टि भी करनी थी। इस ने प्राचीन व्यवस्था के सिवा और कुछ परिवर्तन नहीं किया। इस ने एक नये समाज की स्थापना की और संसार में सब के लिये, पृथ्वी पर ही एक नये स्वर्ग की रचना कर डाली। इस का प्रादुर्भाव सन् १९१७ के मार्च मास में हुआ था और उसी मास की १५ वीं तारीख़ को ज़ार ने अपना पद त्याग किया। लेनिन उस समय ज़्यूरिच में

था। और इस कारण कुछ समय के लिये शासन के अधिकार करेन्स्की के हाथ में आ गये। क्रान्ति--कारी केवल मज़दूर, सैनिक तथा कृषक लोग थे। पर उन्हें भुलावा में डाल दिया गया; वह शक्ति जो कि इन के अधिकार में थी, वकीलों, पूँजीपतियों और बुरे से बुरे राजनीतिज्ञों के हाथ में आ गई। इस क्रान्ति में कितने ही लोग भाग्यशाली और धनवान, बनने की चेष्टा करने लगे। जनता इस हलचल को बिलकुल ही न समझी, वह अवाक सी हो रही। कृषकों के कष्ट अब भी वैसे के वैसे ही थे। ज़ार के स्थान पर करेन्स्की तथा कार्नीलोव सरीखे श्रमजीवियों के घातक पुरुष शासक बन बैठे थे। ज़ार चला गया किन्तु फिर भी सर्वसाधारण के भाग्य में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। रूस की भूमि अब भी युद्ध का क्षेत्र बन रही थी। षड़यन्त्र और दमन अब भी सुने जाते थे। मज़दूरों को पहले ही की भाँति अब भी भर पेट भोजन नहीं मिलता था। कृषकों को अब भी उन की भूमि नहीं दी गई और सैनिकों को फिर मोरचों पर जाने की आज्ञा हुई।

पुरुष-सिंह लेनिन द्वारा उद्धार

तीसरी अप्रैल सन् १९१७ को लेनिन की निर्वासन अवधि समाप्त हुई। रूस की सम्पूर्ण जनता ने हृदय से उस का स्वागत किया। किन्तु ज्यों ही उस ने करेन्सकी की अर्ध पूँजीपति-शासन प्रथा से असन्तोष प्रकट किया, प्रजा ने उस का विरोध किया और उसे एक बार फिर वहाँ से हटना पड़ा। पर इस के बाद एक बार फिर बड़े उत्साह से क्रान्तिकारी आन्दोलन बढ़ा। बोल्शेविक कार्य्यक्रम सामने रक्खा गया। और सारे रूस में सोवियट सभाएँ स्थापित की गईं। इन पन्चायतों का प्रादुर्भाव कारख़ानों, गांवों, नगरों आदि सभी स्थानों पर हुआ। फल

स्वरूप वही जनता जो कुछ मास पहिले करेन्सकी को शासन-भार हस्त गत करने में सहायता दे चुकी थी, अब उस के बिलकुल विपरीत हो गई। करेन्स्की को बहुत भय हुआ और इस के कारण उस ने कितने ही भयंकर कार्य कर डाले। उस ने मज़दूरों, किसानों और सैनिकों की पंचायतों के दवाने के लिये नीच से नीच उपायों का अवलम्बन किया। किन्तु अब तो समय बीत चुका था। अब तो करेन्स्की के आत्म—समर्पण किये बिना जनता का सन्तुष्ट होना असम्भव था। पर करेन्सकी ने ध्यान न दिया। संकट काल के नियम काम में लाये गये और जिन सैनिकों को सब से अधिक राज--भक्त समझा गया, उन को सोवियटों के दवाने के लिये जगह जगह भेजा गया। परन्तु उन पर सोवियटों का प्रभाव पहले ही पड़ चुका था इस कारण उन्हों ने बन्दूक़ चलाने से साफ़ इन्कार कर दिया। जुलाई का महीना था। बहुत से लोग गलियों में कहते फिर रहे थे, "कारख़ाने मज़दूरों के हैं' 'भूमि कृषकों की है,'' 'युद्ध का अन्त करो' 'करेन्स्की की राज्य-सत्ता का अन्त करो,' सब अधिकार सोवियटों को दिये जायँ।

करेन्स्की के, सोवियटों को सुसंगठित होने से पहले ही कुचल डालने के लिये शीघ्रता से किये गये सारे प्रयत्न विफल हुए। ७ नवम्बर को सोवियटों की एक पार्लियामेण्ट बुलाई गई। यह दिन रूस के इतिहास में एक स्मरणीय दिन है, क्यों कि इसी दिन जनता को राज्य सत्ता और स्वतन्त्रता के अधिकार प्राप्त हुए थे। एक तरफ़ बोल्शेविक लोग जनता का पथ प्रदर्शन करते थे और दूसरी ओर मैन्शेविक, कैडेट, और पूँजीपति लोग एक साथ मिल कर बोल्शेविक लोगों को अवसर पाते ही कुचल देने का प्रयत्न करने लगे। इन लोगों ने बोल्शेविक लोगों को बदनाम करने का जर्मन एजेन्टों के समान, भरसक प्रयत्न

किया किन्तु बोल्शेविक लोगों पर जनता का विश्वास दृढ़ हो चुका था और इस कारण उन का मिथ्यापवाद अधिक समय तक न रहा। बाढ़ का जल शिर पर से होकर चला गया। करेन्स्की के शासन की नौका वहती हुई एक चट्टान से टकरा कर चूरचूर हो गई। जनता उमड़ उमड़ कर बोल्शेविकों के पास आने लगी और उन लोगों पर उस का पूरा विश्वास हो गया।

बोल्शेविक क्रान्ति

ट्रॉट्स्की, कोमनेव और ज़िनोविव बोल्शेविकों के सत्ताधारी होने के विरोधी थे। इन का विचार था कि इस कार्य्य में आवश्यकता से अधिक शीघ्रता की जा रही है। परन्तु लेनिन अपनी वात पर दृढ़ था। वह वार वार यही कहता था कि, "मित्रो, समय अभी है, इस समय कार्य कर लो अन्यथा फिर कभी न कर सकोगे"। नियम पूर्वकसभाएँ होती थीं और लेनिन के सिद्धान्तों का पूर्ण रूप से विरोध किया जाता था। जीवन मरण का प्रश्न था। पेट्रोग्राड, दूसरे स्थानों को आज्ञा देने के लिये केन्द्र नियत कर दिया गया। ७ नवम्बर १९१७ को 'विन्टर पैलेस' (शीत-राजप्रासाद) घेर लिया गया। नाविकों और लाल सेना द्वारा सब बड़ी बड़ी संस्थाएँ घेर ली गईं। विभिन्न सैनिक कैम्पों में स्मोलनी-स्कायर अगुआ वन गया और राज भवन कैम्प के आज्ञानुसार तोपों से उड़ा दिया गया। करेन्स्की भाग गया। क्रान्ति की जय ध्वनि के साथ बोल्शेविकों की विजय हुई और हारे हुए लोग भाग गये। जनसाधारण ने एक अनोखा काम कर दिया और सत्ता जनता के हाथ में आ गई। क्रान्तिकारियों के हृदय विजय-हर्ष से बाँसों उछलने लगे इस के बाद ही शासन प्रबन्ध को ठीक किया गया और सब नगरों ने पेट्रोग्राड के आदेशानुसार कार्य किया। करेन्स्की तथा उस के

साथियों ने पेरिस में जाकर शरण ली और मास्को प्रजा के हाथ में आ गया। कज़न भी शीघ्र ही इसी दशा को प्राप्त हुआ। इस के उपरान्त यूक्रेन पर अधिकार प्राप्त करने का समाचार आया। हर स्थान पर प्रजा की विजय होती गई। राजधानी पेट्रोग्राड से हटा कर मास्को कर दी गई।

क्रान्तिकारी राजनीतिज्ञ

क्रान्तिकारी लोग अब राजनीतिज्ञ बन गये थे। मुख्य शक्तियों के साथ सन्धि कर ली गई। ब्रेस्टलिटोवस्क की सन्धि के अनुसार जर्मन सेना हटा ली गई। इस से मित्र राष्ट्र बहुत ही चिढ़ गये और ऐन्टेन्टी का सारा क्रोध बोल्शेविज़्म के सर आया।

युद्धारम्भ

इस के बाद युद्ध आरंभ हुआ। सैनिक तथा मज़दूर इस के विरुद्ध बड़ी वीरता के साथ लड़े। साम्राज्यवादी सेनायें चारों ओर से मास्को की ओर आने लगीं। पूर्व की ओर से कोलचक और, पश्चिम की ओर से लेट्स, फिनलैन्डी और लेथूरियन सेनाओं ने आक्रमण किया। उत्तर की ओर से इङ्गलैण्ड, फ्रान्स और अमेरिका, और दक्षिण की ओर से डेनिकिन के भयंकर हवाई जहाजों तथा नरसंहारक फौजों ने धावा बोल दिया। एस्टोनिया यूडेनिटन, पोलैण्ड की पेटलुरा की सेनाएँ और क्रीमिया की घुड़सवार फ़ौज भी पहुँची। इस प्रकार चारों ओर से घेरा डाल दिया गया। किन्तु सोवियट ने बहुत वीरता पूर्वक इन का सामना किया। कोलचक की सेना को पीछे हटा दिया गया। मित्रराष्ट्रों को जहाज़ों पर सवार हो कर अपने अपने देशों को लौट जाने के लिये विवश होना पड़ा। डेनकिन को तुला पर पराजित किया गया और उस ने एक अँग्रेज़ी जहाज़ पर चढ़ कर काला सागर द्वारा भाग कर अपने प्राण बचाये।

यूडेनिच के टुकड़े टुकड़े हो गये और वैरेन अज़ोव-सागर की ओर शीघ्रता पूर्वक भाग कर टर्की को चला गया। इस भयंकर हमले का इस तरह अन्त हुआ। सोवियट की विजय हुई और व्लाडीवास्टक से ब्रेस्टलिटोवस्क, आर्चेंज़िल, साइबेरिया से आक्सस और क्रीमिया से काकेशस तक के सारे प्रदेश पर उन्हीं का प्रभुत्व स्थापित हो गया।

विचार शक्ति

क्रान्तिकारियों के विरोधियों की सेनाओं के विचार तथा चरित्र में परिवर्तन उत्पन्न होने का कारण सोवियट की सेनाओं का बड़ा होना न था, किन्तु उन का सेवा का ऊँचा आदर्श था। निकटवर्ती सैनिक पड़ावों पर विचारों की गोले-बारी होती थी। उन के ऊपर सोवियट वायुयानों द्वारा बम् के स्थान पर साहित्य की वर्षा की जाती थी। आक्रमणकारी सेनाओं के सैनिक भी तो आख़िर मनुष्य ही थे, साम्यवाद के महान उद्देश्य की उन के हृदयों पर विजय हुई। इस शिक्षा ने सेना की पँक्तियों को तितर-बितर कर दिया और उन्हों ने ख़ूब उत्साह से युद्ध न किया। वे विद्रोही हो गये और हज़ारों ही की नहीं, बल्कि लाखों की संख्या में आ आ कर सोवियट दल से मिलने लगे। युद्ध के लिये आई हुई सारी सेना इस प्रकार नष्ट-भ्रष्ट हो गई, जिस प्रकार बसन्त के आते ही अफ़ग़ानिस्तान के सीमाप्रान्त के पर्वतों पर जमी हुई बर्फ़ पिघल कर नष्ट हो जाती है। सोवियट की सभी ओर विजय अवश्य हुई किन्तु फिर भी आक्रमणकारियों द्वारा किये गये नुक़सान की पूर्ति एक प्रकार से असम्भव सी हो गई। उस समय लेनिन ने कहा था कि "पूरे तीन साल तक हम लोगों की सारी शक्ति केवल युद्ध में ही लगी रही।" वापस जाते समय क्रोध से भरे हुए आक्रमणकारी लोगों ने भयंकर बर्बादी द्वारा अपने प्रज्वलित

हृदय का बदला चुकाया था। आग और बारूदों द्वारा उन्हों ने देश को ऊजड़ बना दिया था। उन के चले आने पर उन के पीछे उजड़े हुए मकानों और राख के सिवा और कुछ भी बाक़ी न बचा था। किन्तु सर्व शक्तिमान सोवियट ने इस सारे नुक़सान को पूरा कर के शीघ्रता पूर्वक फिर सारी वस्तुओं का बनवाना प्रारम्भ कर दिया। तोपों के गोलों ने सोवियट रूस की विजय को घोषणा की। सारे संसार के श्रमजीवियों के प्रतिनिधि चारों ओर से शीघ्रतापूर्वक मास्को पहुँचे। इस विजय पर चारों ओर से अन्तरराष्ट्रीय सोवियट संगीत सुनाई देने लगे : "सोवियट दीर्घजीवी हो", संसार के सभी श्रमजीवी एकता के सूत्र में सम्बद्ध हों।"

सोवियट्स और रूस निवासियों की प्राचीन जातीयता

सोवियट समुदाय और ख़ास कर पूर्वीय रूस के ग्राम्य-जीवन में प्रबन्ध-सम्बन्धी विभिन्नता भले ही हो, किन्तु सामाजिक दृष्टिकोण से वे भारतीय ग्राम्य-जीवन के समान हैं। जिस प्रकार प्राचीनकाल से भारतवर्ष में पञ्चायतों की स्थापना पाई जाती है, उसी प्रकार वहाँ के व्यक्ति 'सोवियट' के प्रति श्रद्धा रखते हैं। उन का सामाजिक-वातावरण हर दिशा में वैयक्तिक आचार तथा अधिकार की भित्ति पर अवलम्बित है। किन्तु पूर्वी-संसार के लोगों का जीवन मुख्यतः सामाजिक रहा है, उन्हों ने व्यक्तिवाद को गौण रूप दिया है। अतः इस दिशा में यहाँ की पञ्चायतें सोवियट्स भावनाओं से वञ्चित हैं। यही नहीं, समस्त पूर्वी-संसार में साइबेरिया से चीन, तुर्किस्तान से भारत और काकेशस से फ़ारस पर्य्यन्त, सामाजिक आचार-विचार किसी प्रकार भी धार्मिक तथा जातीय व्यवहार से भिन्न नहीं किया जा सकता। इस जातीयता अथवा उन्नत पञ्चायतवाद का हम ने सामूहिक रूप से सदैव स्वागत किया है। इसे इस प्रकार

अपनाने का कारण बहुत अंशों में हमारी पाश्चात्य आर्थिक परतन्त्रता कही जा सकती है। समस्त पूर्वी-देशों और सोवियट रूस की भाषा में बड़ा सादृश्य है। एक अक्षर विज्ञानवेत्ता के लिये तो दोनों भाषायें एक हैं। स्लेवेनिक भाषा-विज्ञान के किञ्चित अनुशीलन से भी यह ज्ञात हो सकता है, कि निकट भूत में ही वहाँ की भाषाओं का संस्कृत तथा फ़ारसी से परि-मार्जन हुआ है। 'अग्नि', 'व्रत', 'मातृ' आदि शब्द तो रूसी भाषा में रोज़मर्रे की साधारण बात-चीत में व्यवहृत होते हैं। पुनः इन दोनों देशों का रहन-सहन बहुत कम अंशों में भिन्नता रखता है। गंगातट के ग्राम वहाँ के वालगा तथा आक्सस के समीप वाले गावों से बिल्कुल मिलते हैं। यहाँ हम अपने गांवों में रह कर अपनी आवश्यकतायें गाँव के बाज़ार से ही पूरी कर लेते हैं, गावों में—परस्पर आर्थिक-सम्बन्ध अधिक घनिष्ट नहीं है, और प्रत्येक ग्राम स्वयम् एक समाज है, हम अपने गाँव की ही आबोहवा से सन्तुष्ट हैं। किन्तु रूसी ग्राम्य जीवन यहाँ से अधिक उन्नत, सुसंगठित, सुसंचालित और वैयक्तिक अधिकारों में स्वतन्त्र है।

पूर्वी-संसार के प्रति सोवियट रूस की धारणा

इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है। अस्तु, इस सम्बन्ध में एक या दो उदाहरण दे कर ही हम उन की भावनायें बताने का प्रयत्न करेंगे। जिस समय रूस में कुछ शान्ति हुई और सोवियट लोगों को किञ्चित शिर उठाने का अवसर मिला, तो सोवियट सरकार ने चार सन्धिपत्रों पर हस्ताक्षर करना स्वीकार किया। (उस समय मैं मास्को ही में था) फ़ारस, अफ़गानिस्तान, बुखारा तथा टर्की के साथ क्रमशः २६ और २८ फरवरी तथा ४ मार्च और १६ मार्च को सन्धियाँ हुईं। इन सन्धियों ने टर्की, फ़ारस तथा अफ़गानिस्तान के

पूर्ण स्वतन्त्र होने की माँग में एक विशेष सहायता दी। इस के बाद उन्हों ने ग्रीक--युद्ध तथा लूसान कानफ्रेन्स में टर्की को बड़ी सहायता पहुँचाई। रूस ने इन पूर्वी राष्ट्रों को एकता तथा शक्ति-संचय का एक महत्वपूर्ण सन्देश दिया।

ज़ारशाही के अधिकारों को नवीन रूस ने तुरन्त तिरस्कृत कर दिया। पूर्वी राष्ट्रों के साथ जितनी असमान तथा घृणोत्पादक सन्धियाँ हुई थीं, उन सब सन्धिपत्रों को रद्दी की टोकरी में डाल दिया गया। फ़ारस जो कि ३१ अगस्त १९०७ ई० के एंग्लो-रूस समझौते के अनुसार कई प्रभावक्षेत्रों में विभाजित कर दिया गया था, पूर्ण स्वतन्त्र क़रार कर दिया गया। इस से सोवियट प्रजातन्त्र के प्रति श्री रज़ा ख़ाँ की श्रद्धा बढ़ गई। फ़ारसी युवकों ने सोवियट रूस की, ज़ार वाली सन्धि को ठुकरा देने वाली नीति पर सन्तोष प्रकट किया। ऋण का आप ही अन्त हो गया और रूस के बैंक तथा तार सम्बन्धी रियायतें भी फ़ारसी सरकार को प्रदान की गईं। राजतन्त्रीय कूटनीति और अत्याचारों के स्थान पर अब बन्धुत्व और प्रेम--भावना दीख पड़ने लगी। हर जगह सोवियट--सदस्यों का आदर होने लगा। फ़ारसी प्रजातन्त्र तो सोवियट रूस को अपना उद्धारकर्त्ता और संरक्षक मानने लगा।

सन्धिपत्रों का संक्षिप्त परिचय

सोवियट तथा अन्य राष्ट्रों की सन्धि की कुछ शर्तें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सोवियट-परशियन सन्धि की पहिली शर्त्तः—रूस की साम्यवादी सोवियट सरकार रूस साम्राज्या--न्तर्गत प्रचिलित कूटनीति तथा रूस सम्राट के अत्याचारों की घोर निन्दा करती हुई उस का अन्त करती है, तथा फ़ारसी लोगों की उन्नति तथा सुख में अपना हार्दिक सन्तोष प्रकट करती है। ज़ार--शाही ने अब तक जो नीति फ़ारस के प्रति

वर्त्ती है, और जो वर्त्तमान असभ्य नीति फ़ारसी लोगों के साथ वर्त्ती जाती है, यह सरकार आज से उस का अन्त करती है। ज़ार की जो नीति समस्त पूर्वी देशों (एशिया) की स्वतन्त्रता की भक्षक रही है, तथा ज़ार की कठोर-क़ानूनी नीति जिस प्रकार फ़ारस की आज़ादी के अपहरण करने में लगाई जाती रही है, (जिस के फलस्वरूप यहाँ के व्यक्ति ज़ारशाही के शिकार रहे हैं) और जिस नीति के बल पर यूरोपीय राष्ट्रों ने यहाँ की सम्पत्ति पर हाथ मारा है, उन्हें बिना किसी उज़्र और शर्त्त के यह सरकार ग़ैर-क़ानूनी क़रार देती है।

टर्की के साथ की गई सन्धि का आशय इस प्रकार है:—

टर्की की राष्ट्रीय महासभा और सोवियट रूस में आज भ्रातृत्व का सम्बन्ध स्थापित हो रहा है। ये दोनों राष्ट्र यूरोप के साम्राज्यवादियों की बढ़ती हुई साम्राज्यलोलुपता का विरोध करने में आज से अविरल परिश्रम करेंगी। "आज से इन दोनों राष्ट्रों का प्रमुख उद्देश्य होगा कि वे पूर्वीय संसार की राष्ट्रीय उन्नति तथा स्वातन्त्र्य संग्राम में पूरा उद्योग करें। हम दोनों राष्ट्र इन पूर्वी राष्ट्रों को पूर्ण स्वतन्त्रता--प्राप्ति के अधिकार को हृदय से मानते हैं और इस बात के पक्ष में पूर्णतया हैं कि पूर्वी संसार के राष्ट्र अपने माकूल स्वराज्य शासन--विधान तैयार करलें।

पाश्चात्य पूँजीपतियों के अत्याचारों—ख़ास कर जिस प्रकार उन्हों ने पूर्वी-संसार को आर्थिक दृष्टि से पीड़ित किया है—उस के विरोध में सोवियट रूस की जो नीति है, उस का विश्लेषण फ़ारस के प्रमुख मन्त्री श्री आग़ा मीको ज़ां के शब्दों में किया जा सकता है। (उक्त सन्धिपत्र पर आप ने १९२७ ई० के अक्टूबर मास में हस्ताक्षर किया था।) उन का कथन है:—

'सोवियट नीति की यह बहुत बड़ी विजय है कि फ़ारस आज यह स्वीकार कर रहा है कि सोवियट यूनियन की तथा अन्य

यूरोपीय शक्तियों की वैदेशिक नीति में प्राकृतिक विरोध और आकाश--पाताल का अन्तर है।' दूसरे शब्दों में यूरोपीय शक्तियों की एशिया सम्बन्धी नीति की नितान्त विरोधनी शक्ति में इस को यों कहना चाहिये कि सोवियट यूनियन ने एशियाई आदर्शों और भावों का समुचित आदर किया है और यूरोप के दूसरे साम्राज्यवादी राष्ट्र विशेषतया ग्रेट ब्रिटेन के प्राच्य आदर्शों के सर्वनाश करने में कोई कसर उठा नहीं रखी है।

सोवियट शासन विधान

सोवियट शासन विधान के सम्बन्ध में यहाँ हम बहुत संक्षिप्त विवरण देते हैं। आजकल संसार में प्रायः सब कहीं शासन की व्यवस्था ऊपर से नीचे को ओर होती है। पर रूस का क़ायदा ठीक इस से उल्टा है। सोवियट रूस के काम छोटे पदों और निम्न--कोटी के व्यक्तियों पर अधिक निर्भर हैं। उन के सञ्चालन की बागडोर निम्न कोटि के पदाधिकारियों ही के हाथ में है। ऊँचे पद वाले केवल उन के सहायक तथा निरीक्षक की भांति हैं। ग्राम्य पञ्चायत, नगर पञ्चायत, ज़िला पञ्चायत, डिविज़न पञ्चायत प्रान्तीय पञ्चायतों और केन्द्रीय पञ्चायत की नियमित व्यवस्था की गई है। इन सब के क्षेत्र परिमित होते हुए भी ये एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। ग्राम पञ्चायतें अपने ग्राम के प्रश्नों को हल करती हैं। नगर की पञ्चायतों का कार्यक्षेत्र नगर की सीमा तक बद्ध है। ग्राम्य पञ्चायतें अपने प्रतिनिधि ज़िले की पञ्चायतों में भेजती हैं। ज़िले की पञ्चायतें अपने प्रतिनिधि डिविज़नल पञ्चायतों में और इसी प्रकार वहाँ के प्रतिनिधि प्रान्त की पञ्चायतों में तथा प्रान्तीय पञ्चायतों के निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा केन्द्रीय पञ्चायत (सर्वोपरि केन्द्रीय सरकार) बनाई जाती है।